कृष्णा सोबती और प्रतिभा राय की कहानियों में स्त्री चेतना

(एम० फिल० की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

शोध-निर्देशक

प्रो० मैनेजर पाण्डेय

शोधकर्त्ता

भगवान साहु

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली - ११००६७

१९९७

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067 INDIA

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान

१७ जुलाई, १९९७

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **श्री भगवान साहु** द्वारा प्रस्तुत **"कृष्णा सोबती तथा प्रतिभा राय की कहानियों में स्त्रीचेतना"** शीर्षक लघु शोध–प्रबंध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य किसी भी विश्वविद्यालय में इससे पूर्व किसी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है। यह लघु शोध–प्रबंध श्री भगवान साहु की सर्वथा मौलिक कृति है।

अध्यक्ष
प्रो० मैनेजर पाण्डेय
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – ११० ०६७

शोध–निर्देशक
प्रो० मैनेजर पाण्डेय
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – ११० ०६७

GRAM : JAYENU TEL. : 6107676/6167557, TELEX: 031073167 JNU IN FAX: +91-11-616-5886

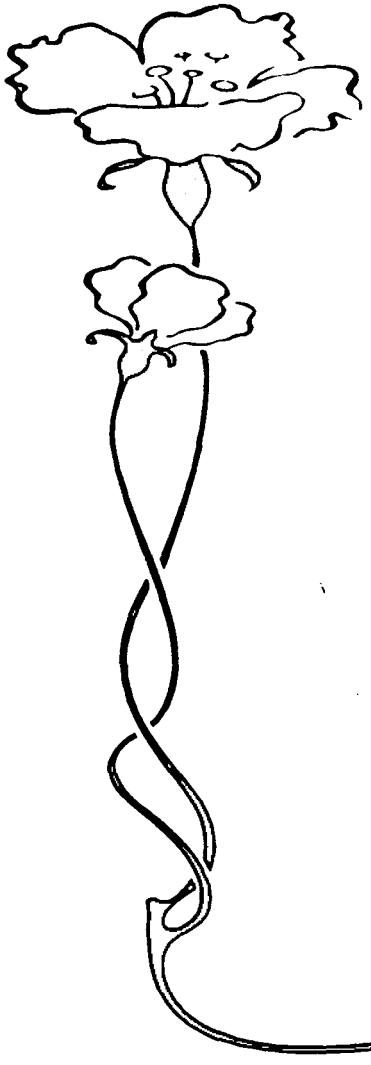

समर्पण.....

गुरुवर केदारनाथ सिंह
को जिनके सान्निध्य ने
मुझे तुलनात्मक अध्ययन की
नयी सीख दी.

विषय-सूची

पृष्ठ सं०

शुरुआत से पहले ..... i-iv

पहला अध्याय 1-24

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व उड़िया महिला लेखन तथा कृष्णा सोबती और प्रतिभा राय

(क) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला–लेखन और कृष्णा सोबती 1-14
(ख) स्वातंत्र्योत्तर उड़िया महिला–लेखन और प्रतिभा राय 15-24

दूसरा अध्याय 25-49

सोबती तथा प्रतिभा राय की कहानियों में स्त्री-चेतना के विविध आयाम:

(क) कृष्णा सोबती की कहानियों में स्त्रीचेतना के विविध आयाम 25-37
(ख) प्रतिभा राय की कहानियों में स्त्रीचेतना के विविध आयाम 38-49

तीसरा अध्याय 50-62

सोबती तथा प्रतिभा राय की कहानियों में स्त्री-चेतना :
एक तुलनात्मक अध्ययन
(कहानीकारों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के विशेष संदर्भ में)

परिशिष्ट-एक 63-75
कृष्णा सोबती तथा प्रतिभा राय द्वारा कुछेक प्रश्नों के उत्तर–

परिशिष्ट-दो 76-80
कृष्णा सोबती और प्रतिभा राय की साहित्य साधना–स्वीकृति, सम्वर्द्धना और सम्मान

संदर्भ सूची 81-85

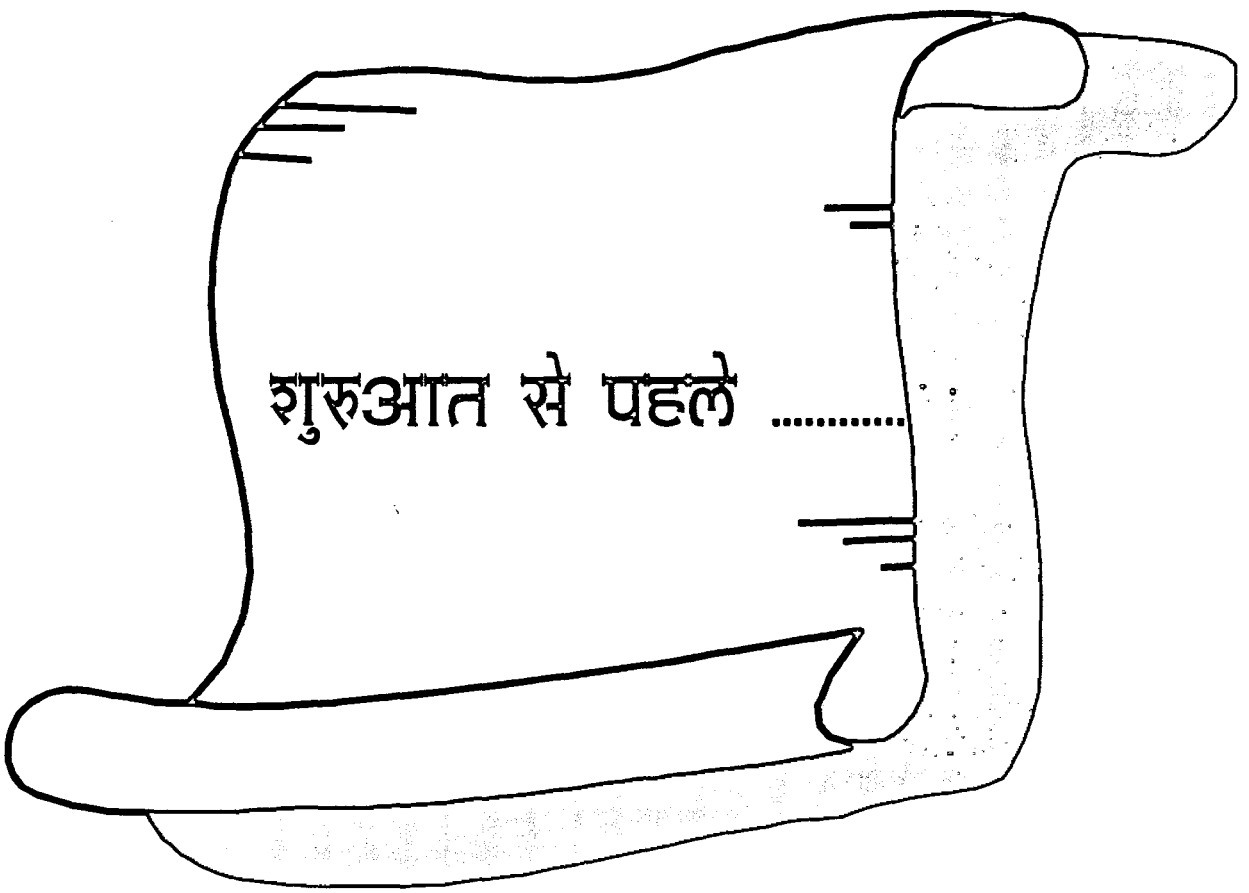
शुरुआत से पहले .....

एक प्रश्न बार–बार मन में उठता रहा है कि रचना का मूल उत्स क्या है ? कोई रचना करता क्यों है ? रचना की प्रेरणा कैसे मिलती है, उसका असल प्रयोजन क्या है? परंपरा से बना बनाया जवाब इस बेचैनी के प्रसंग में सबसे पहले हमारे सामने आता है। यह जवाब है कि रचना आनंद के लिए की जाती है, उसका काम मनोरंजन करना होता है, फालतू वक़्त काटने के लिए उसका प्रयोग होता है और उसकी भूमिका विनोद पैदा करने के इर्द – गिर्द सिमटी हुई है : ''काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्'। इस उत्तर की अपर्याप्तता और इसका उथलापन बहुत समय तक ढका नहीं रह सकता। किसी रचना को पढ़ते समय हमें जो बेचैनी होती है, तमाम तरह की – दुश्चिंताओं से हमारा जो साक्षात्कार होता है उससे क्या यह उत्तर टकरा सकने का सामर्थ्य रखता है ?

कहने की ज़रुरत नहीं कि रचना का मूल उद्देश्य कुछ और है। रचना अपने वर्तमान की अपूर्णताओं, अपर्याप्तताओं की उपज होती है। अपने परिवेश से असंतुष्टि रचना की वास्तविक प्रेरक शक्ति है। रचना में विरचना स्वभावतः शामिल होती है। पहले वर्तमान को समझना फिर उसकी कमजोरी पर सटीक टिप्पणी करना साहित्यिक सर्जना का चरित्र है। इसमें वर्तमान को बदलने की मंशा शामिल होती है। हिन्दी साहित्य में 'दलित लेखन' और 'स्त्री–लेखन' इसी बदलाव की आकांक्षा की अभिव्यक्ति है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध दो अलग–अलग भाषा संसार की प्रबुद्ध कथा लेखिकाओं को साथ रखकर देखने का एक लघु प्रयत्न है। ये कथा–लेखिकाएँ कृष्णा सोबती और प्रतिभा राय – भाषाई दृष्टि से भिन्न ज़रुर हैं लेकिन जिस व्यवस्था के ख़िलाफ़ इनकी लेखनी तत्पर है वह मूलतः एक है। पुरुष वर्चस्व को समाप्त करना दोनों का अभीष्ट है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे स्त्री वर्चस्व कायम करके मात्र भूमिका की

अदला–बदली करनी चाहती हैं जैसा कि हम सामान्यतः पश्चिम से आई हुई 'फेमिनिस्ट मूवमेंट' के राजनीतिक कार्यसूची को देखते हुए अनुमान लगाते रहे हैं। और यह अनुमान ही हमें भीतर–भीतर त्रस्त किए रहा है। दोनों लेखिकाओं का अभीष्ट वर्चस्ववादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ है। यह वर्चस्व किसी का भी हो सकता है। उनकी आकांक्षा शोषण विहीन समता मूलक समाज की है।

कृष्णा सोबती का कथा संसार पंजाबी जीवन से सम्बन्ध है और प्रतिभा राय का उड़ीसा से। पंजाब अपेक्षाकृत सम्पन्न और भरा पूरा इलाका है जबकि उड़ीसा में कालाहांडी जैसे क्षेत्र शामिल हैं। आर्थिक स्थिति मानसिकता पर नियाामक प्रभाव डालती है और जीवन जीने के ढंग को सर्वाधिक प्रभावित करती है। एक ही सांस्कृतिक संरचना वाले इलाके के दो भाग अगर आर्थिक रूप से असमान है तो उनमें चलने वाले संघर्ष के मोर्चे भी एक जैसे नहीं होंगे। सोबती जी के स्त्री पात्रों की चिंता का केन्द्र बिन्दु आर्थिक नहीं है जबकि प्रतिभा राय के स्त्री पात्रों के बारे में यह बात सर्वथा लागू नहीं होती। प्रतिभा राय की कई कहानियों की स्त्रियाँ जीविका के लिए संघर्ष करती नज़र आती हैं।

हिन्दी आलोचना ने कहानी विधा पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया है। शायद इसका कारण यह मान्यता रही हो कि कहानी तो बहुत छोटे उद्देश्य को लेकर लिखी जाती है। उसमें पूरा जीवन या जीवन का वृहत्तर भाग समेटने की सामर्थ्य नहीं होती। वह सिर्फ कुछ बिंदुओं पर उंगली रखती है। वह कोई विकल्प नहीं दे सकती आदि। ऐसा इसलिए कि कहानी को उपन्यास का अंग विशेष मान लिया गया है। एक विधा को दूसरी विधा से जोड़कर उसकी हैसियत को कमतर कर दिया गया है। प्रतिभा राय और कृष्णा सोबती के उपन्यास महत्वपूर्ण हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि उनकी कहानियाँ कम महत्वपूर्ण हैं या वे उपन्यासों में व्यक्त चिंताओं के पूरक मात्र हैं। सोबती और राय

दोनों की कहानियाँ अपनी संपूर्णता में एक अलग स्वतंत्र और पूर्ण जीवन–दृष्टि रचती हैं और इनमें प्रकट आकांक्षा जितनी बलवती है उतनी संपूर्ण भी। दोनों ही कथा लेखिकाओं ने जीवन के बहुविध प्रसंगों को अपनी कहानियों का उपजीव्य बनाया है, समाज और समय की बहुवर्णी चित्र उनमें मिलते हैं और कुल मिलाकर वे व्यवस्था का दूसरा विकल्प तैयार करते हैं।

कृष्णा सोबती और प्रतिभा राय की कथा भाषा का अध्ययन कम दिलचस्प नहीं है। इनका तुलनात्मक अध्ययन एक बड़ा और अलग मसला है जिसपर स्वतंत्र शोध की गुंजाइश बनती है। मैंने अपने इस लघु शोध प्रबन्ध में 'स्त्री चेतना' के विभिन्न बिंदुओं की ही पड़ताल की है और इस क्रम में कुछ एक निष्कर्ष निकाले हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध तीन अध्यायों में विभाजित हैं। पहला अध्याय 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व उड़िया महिला लेखन तथा कृष्णा सोबती और प्रतिभा राय' नाम से है। इसमें हमने हिन्दी तथा उड़िया महिला लेखन की नींव की तलाश करने के साथ–साथ कुछ प्रतिष्ठित महिला लेखकों के संक्षिप्त विवेचन के माध्यम से महिला लेखन की प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट करते हुए विवेच्य लेखिकाओं की नारी चिंतन सम्बन्धी विशेषताओं को उजागर करने का प्रयास किया है।

दूसरा अध्याय 'सोबती तथा प्रतिभा राय की कहानियों में स्त्रीचेतना के विविध आयाम' शीर्षक से है। इसमें दोनों ही कथा लेखिकाओं की कहानियों में व्याप्त स्त्रीचेतना पर विचार करते हुए उनमें निहित समान बिंदुओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

तीसरा और अंतिम अध्याय 'सोबती तथा प्रतिभा राय की कहानियों में स्त्री चेतना: एक तुलनात्मक अध्ययन' में दोनों लेखिकाओं की स्त्रीचेतना में व्याप्त मूलभूत अंतर को स्पष्ट करते हुए उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन

के इस क्रम में लेखिकाओं की सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश को मुख्य रूप से ध्यान में रखा गया है।

प्रस्तुत शोध के सामग्री–संकलन में 'नटरंग प्रतिष्ठान' और 'साहित्य अकादमी' पुस्तकालय के अधिकारियों, कर्मचारियों का सहयोग मिला । लेखक इन सबका आभारी है। सामग्री–संकलन में जो सहयोग डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र ने प्रदान किया है, उसके प्रति भी लेखक कृतज्ञ है।

लेखिकाओं से हुई मुलाकातों में जो जानकारी मिली इससे इस शोध प्रबन्ध को सम्पन्न कराने में बहुत सहायता दी है। उनके प्रति भी हार्दिक आभार।

मित्र श्री बजरंग बिहारी तिवारी (शोध छात्र, ज० ने० वि०) के साथ नित्य के विचार–विमर्श से कई समस्याओं का समाधान मिला है। यदि उनका सहयोग न मिलता तो संभवतः शोध कार्य की रूपरेखा कुछ और होती। ऐसे में उनके प्रति आभार प्रकट करना मित्रता का उपहास समझता हूँ।

अपने शोध निर्देशक प्रो० मैनेजर पाण्डेय के सान्निध्य में मैंने आलोचना की दृष्टि पाई है। इस शोध में जो कुछ भी श्रेष्ठ है वह उनसे प्राप्त दृष्टि का सुपरिणाम है। अतः उनके प्रति आभार व्यक्त करना सिवाय औपचारिकता के और कुछ नहीं है।

प्रस्तुत शोध कार्य से जिज्ञासुओं को अगर थोड़ा बहुत परितोष मिल सका तो लेखक अपने श्रम को सार्थक समझेगा।

भगवान साहु

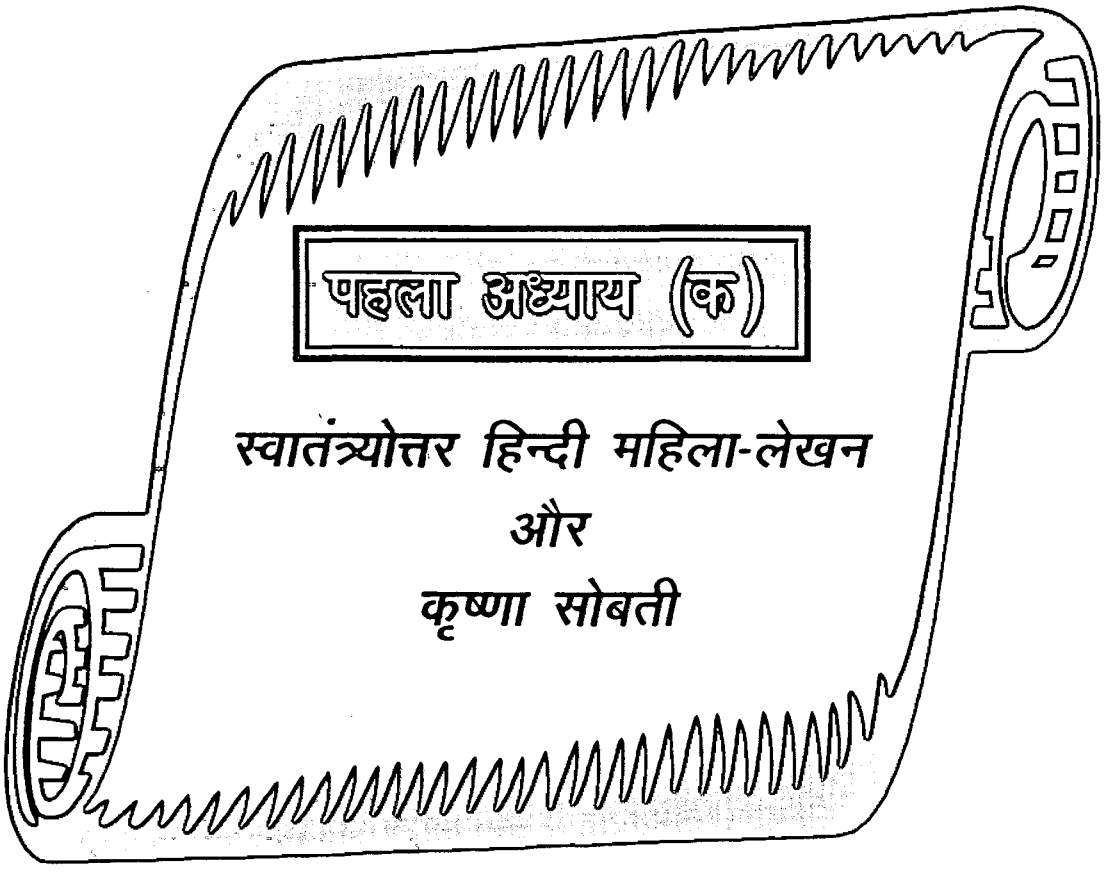

पहला अध्याय (क)

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला-लेखन
और
कृष्णा सोबती

भारत जैसे पारंपरिक सामाजिक संरचना में आधुनिकता का प्रवेश एक युगान्तकारी घटना है। यह दो रूपों में दिखी। पहला तो पश्चिम प्रभावित आधुनिकता है और दूसरा, खुद अपनी परंपराओं का विवेकपूर्ण अवगाहन करते हुए निर्मित चेतना। ये दोनों धाराएँ अलग–अलग नहीं मिली–जुली रहीं। पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान ने इसमें उत्प्रेरक की भूमिका निभाई। आधुनिकता प्रायः दो–तीन आयामों में दिखती है – पहला, पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के सम्मुख अपने को रखना, दूसरा – समाज की अमानवीयता को समझते हुए उससे निजात पाना, तीसरा – पारंपरिक सामाजिक पदानुक्रम की अमानवीयता को समझते हुए उसे निर्मूल करने का प्रयास करना। इस आख़िरी बिन्दु पर संघर्ष के दो मोर्चे बनते हैं – पहला, दलितों की स्थिति पर पुनर्विचार और दूसरा, स्त्रियों की स्थिति का रेखांकन। पारंपरिक सत्ताधारी तथा शिक्षा सम्पन्न तबके ने यह जिम्मेदारी अपने हाथ में ली और उसने सबसे पहले इन सवालों का सोचना–विचारना प्रारम्भ किया। लेकिन वह स्वयं भुक्त भोगी तो था नहीं इसलिए उसने जो कुछ भी सोचा, लिखा या प्रदर्शित किया उसमें सच्चाई और सहानुभूति का घालमेल था। यही वज़ह है कि इस अभियान को वह बहुत दूर ले चल सकने में समर्थ न हो सका। आख़िरकार स्वानुभूति और सहानुभूति में फ़र्क तो होता ही है। शिक्षा का ज्यों–ज्यों प्रसार हुआ, आधुनिक चेतना जैसे–जैसे निचले पायदानों तक पसरती गई, वैसे–वैसे चिंतन का दायरा भी बढ़ता गया। आख़िरकार वह समय भी आया जब सदियों से उत्पीड़ित, प्रताड़ित तबके ने अपने अनुभवों को मुखर अभिव्यक्ति दी। इस अभिव्यक्ति ने एक तरफ तो पारंपरिक सत्ता–तंत्र को कटघरे में खड़ा कर दिया, दूसरी तरफ इसने सामूहिक बेहतरी का मार्ग प्रशस्त किया। कहना न होगा सच्चामार्ग यही है। हाँ, इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि शुरुआती अभिव्यक्तियों में जो अनगढ़पन दिखता है, वह उसकी कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी शक्ति है। शक्ति इस अर्थ में कि वह पारंपरिक

सौन्दर्यशास्त्र के समानान्तर एक दूसरी सौन्दर्यदृष्टि रचने की कोशिश है।

आज़ादी के बाद हमें महिला चिंतकों, कथाकारों, कवियित्रियों और संस्कृतिसमीक्षकों की एक पीढ़ी बनती दिखाई देती है, जिनके चिंतन में एक साहस है – अकेले चल सकने का, अपने पैरों पर खड़ा होने का और अपना बुरा–भला खुद सोचने का। महादेवी वर्मा एक गीत में कहती हैं – पंथ होने दो अपरिचित। प्राण रहने दो अकेला। यहाँ अकेलेपन का वरण है – सायास, जान–बूझकर–एक लम्बे सांस्कृतिक अभियान के तहत। यह जानते हुए भी कि रास्ता अनजाना है, अबूझा है। मगर रास्तों का क्या। गंतव्य तो धुंधलके से गिरा हुआ नहीं है। साध्य जब स्पष्ट हो तो साधन को लेकर आगा–पीछा देर तक नहीं किया जा सकता।

हिन्दी 'महिला लेखन' पर विचार करते हुए महादेवी वर्मा का नाम प्रायः भुला दिया गया है। पर वास्तविकता यह है कि मन्नू भंडारी से होती इस प्रक्रिया की शुरुआत के बीज महादेवी ने ही बोया था – स्त्री की बहुआयामी सर्जनात्मक क्षमता को रेखांकित करते हुए, रचनात्मक जगत में व्यक्तित्वपूर्ण लेखन की स्थापना करते हुए। इस दृष्टि से समकालीन 'महिला–लेखन' के लिए भी महादेवी जी प्रेरणास्रोत हैं – इसमें संदेह नहीं। रेखाचित्र में नारी उत्पीड़न के प्रति महादेवी जी की जो वितृष्णा और प्रश्नाकुलता का स्वर परिलक्षित होता है, वह समग्रता में न सही, फिर भी स्त्री प्रतिवाद की अगुवाई अवश्य करता है। 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के अनेकों निबन्ध में महादेवी जी ने भारतीय समाज में स्त्री की पराधीनता की श्रृंखला की असंख्य कड़ियों को रेखांकित करने के साथ–साथ स्त्री जागरण और स्त्री मुक्ति के सवाल को बार–बार उठाया है। यही वह प्रस्थान बिन्दु है, जिसके सहारे 'हिन्दी महिला लेखन' ने अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ी है, अपने अस्तित्व को मानवीय रूप से अनुभव करने और करवाने में सफल हो पाई है। अस्तित्व और अस्मिता की इस लड़ाई में मन्नू भंडारी, उषा प्रियम्बदा, ममता

कालिया, राजी सेठ, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, मेहरून्निसा परवेज़, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, गीतांजली श्री जैसी तमाम लेखिकाओं ने कथा लेखन को एक नया आयाम देते हुए नारी अस्मिता के प्रश्नों को बड़ी गंभीरता और मुखरता के साथ उठाया है। प्रस्तुत विवेचन में हम मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान और मैत्रेयी पुष्पा के कथा लेखन को ही मुख्यतः अपना आधार बनायेंगे। महिला कथा लेखन के इस चुनाव में जहाँ एक ओर वरिष्ठ पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाली लेखिकाएँ – मन्नू भंडारी और कृष्णा सोबती हैं, वहीं दूसरी ओर समकालीन महिला लेखन को समेटती मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान और मैत्रेयी पुष्पा जैसी नए हस्ताक्षर भी। वैसे इस चुनाव में नासिरा शर्मा, शशि प्रभा शास्त्री, चित्रामुद्गल आदि महत्वपूर्ण लेखिकाओं का नाम भी शामिल किया जाना चाहिए था, पर हर चयन की एक दृष्टि और सीमा होती है। अतः प्रस्तुत चयन को भी इसी अर्थ में ग्रहण किया जाना चाहिए।

मन्नू भंडारी

हिन्दी कहानी में 'नारी मुक्ति' की अभिव्यक्ति को गति देने वाली महिला कथाकारों में मन्नू भंडारी का नाम अग्रगण्य है। 'मैं हार गई', 'एक प्लेट सैलाब' 'यही सच है', 'तीन निगाहों की तस्वीर', 'मेरी प्रिय कहानियाँ तथा त्रिशकु' तथा 'श्रेष्ठ कहानियाँ' मन्नू जी के प्रकाशित कहानी संग्रह हैं। कहानी के अतिरिक्त मन्नू जी के दो उपन्यास – 'आपका बंटी' और 'महाभोज' भी है। अपनी इन सारी कृतियों में मन्नूजी ने साहित्य की युगों पुरानी कथा रूढ़ियों के मलबे के नीचे से नारी के मौलिक व्यक्तित्व का अन्वेषण कर उसके चरित्र का निरूपण किया है। नारी को उसके घुटनों से मुक्त कर उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय दिया है। मन्नूजी ने कहा है – "मैं नारी को उसके घुटन से मुक्त करना चाहती हूँ। उसमें बोल्डनेस देखना चाहती हूँ ..... और देखिए 'बोल्डनेस' हमेशा दृष्टि में होना चाहिए, वर्णन में नहीं। मैंने अपनी कहानियों में इसे

इसी रूप में चित्रित किया हैं।"[१]

यह मन्नू जी के नारी पात्रों का 'बोल्डनेस' ही है कि वे सदियों पुरानी रूढ़ियों का परित्याग कर सभी प्रकार के वर्जनाओं को चुनौती देती है और नारी के लिए निश्चित लक्ष्मण रेखा को लांघकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व हासिल करने का साहस करती है। 'ऊँचाई' कहानी की नायिका का यह कथन कि – "मेरे प्यार की लाश ने तुम्हें जीती–जागती लाश बना दिया है । मेरा प्यार ही तुम्हें नया जीवन देगा। मेरे इस अधिकार को मुझसे कोई नहीं छीन सकता ..... उचित–अनुचित मेरा अपना ही विवेक है और मुझे उसके अनुसार चलने दो।"[२] नारी मुक्ति का शंखनाद है जिससे हिन्दी महिला लेखन की नींव बनी है। मन्नूजी की यह आत्मदृढ़ नायिका (शिवानी) पूर्व प्रेमी (अतुल) के जीवन के प्रति उदाशीन भाव को तोड़ने की मंशा से उससे यौन सम्बन्ध कायम कर, पति (शिशिर) के समक्ष बिना किसी ग्लानि के स्वीकार करती हुई यह स्पष्ट संकेत देती है कि यौन शुचिता के परंपरावादी दबावों से वह स्वतंत्र होती स्त्री है। इस तरह कहानी में काम सम्बन्धों के मानवीय नैतिक बोध की स्थापना की गई है। प्रेमचंद कालीन नारी पात्र जहाँ पति और प्रेमी के बीच शरीर और आत्मा को बाँटकर, धार्मिक विश्वासों का सहारा लेकर आत्मपीड़न की स्थिति में जीती थीं, पति के मरने पर भी प्रेमी का सिंदूर नहीं ग्रहण करती थीं, वहाँ शिवानी समकालीन नारी की परिवर्तित और विकसित मानसिकता को रेखांकित करती है।

'यही सच है' मन्नू जी की यादगार कहानी का नाम है जिसमें प्रेम की पारंपरिक त्रिकोणात्मक स्थिति को आधुनिक नारी और बदली सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बिल्कुल नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। एक नारी एक ही समय में दो व्यक्तियों को प्यार

१. वंशीधर, राजेन्द्र मिश्र – मन्नू भंडारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, नटराज पब्लिशिंग–हाउस, करनाल, प्रथम सं० १९८३ पृ० १०१

२. मन्नू भंडारी – एक प्लेट सैलाब, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली प्रथम सं० १९६८, पृ० १२४

कर सकती है, यह सत्य अपनी बनाई इस दुनियाँ में पुरुषवर्चस्व वाले समाज को स्वीकार नहीं। पर यह सच है और मन्नू जी ने बड़े ही नाजुक हाथों से, साहस के साथ इस सत्य को अपनी इस कहानी में उकेर दिया है। कहानी की नायिका दीपा का एक साथ निशीथ और संजय से प्यार करना इस बात का प्रमाण है।

यहाँ एक बात स्पष्ट करना चाहूँगा कि महज आक्रामक या 'बोल्ड' माने जाने के लिए या फिर साहसिकता के प्रदर्शन के लिए मन्नू जी ने इन कहानियों की रचना नहीं की है, अपितु नर–नारी के पारस्परिक प्रेम सम्बन्ध में आए बदलाव को एक पूर्ण यथार्थवादी दृष्टि से समझने और समझाने की चेष्टा की है। उनकी नायिकाओं में 'बोल्डनेस' अवश्य है, पर यह 'बोल्डनेस' मन्नू जी के विज़न में है, उनकी दृष्टि में है। आज की तमाम महिला लेखको की तरह अभिव्यक्ति के स्तर पर नहीं। मन्नू जी के नारी पात्र अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व, अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक अवश्य हैं, पर पुरुष की उच्छृंखलता से स्पर्धा करने वाली नहीं। जीवन में पुरुष की अनिवार्यता को मन्नू जी सहर्ष स्वीकार करती हैं। 'जीती बाजी की हार' – कहानी की नायिका का कथन है – "नारी सब कुछ होकर भी नारी है, और नारी को एक साथी चाहिए, एक सहारा चाहिए, परिवार चाहिए और चाहिए बच्चे। उच्च से उच्च शिक्षा भी उसकी इस भावना को नहीं कुचल सकती।"[३]

प्रस्तुत कहानी की नायिका मुरला के उपर्युक्त कथन से मन्नू जी के दृष्टि को समझने में काफ़ी सहायता मिलती है और वह यह कि नारी चाहे कितनी भी शिक्षित क्यों न हो, क्रांति का आह्वान क्यों न करती हो, लेकिन उसकी पूर्णता पुरुष के संग–साथ में है, मातृत्व की महता में है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि यद्यपि मन्नूजी के नारी पात्र जीवन में पुरुष के संग–साथ को अनिवार्य मानती हैं, लेकिन वे पति की

३. मन्नू भंडारी – मैं हार गई, अक्षर, प्रकाशन, दिल्ली प्रथम सं० १९५७, पृ० ३६

अंधानुगामिनी नहीं हैं और न ही गृहिणी के दायित्व का निर्वाह करने वाली काम चलाऊ मशीन मात्र। अपने आदर्शों, सिद्धान्तों की पूर्ति के लिए राजनीतिक जीवन में भी वह पति की प्रतिद्वन्द्विता करती है (हार कहानी की नायिका) और पति से अलगाव महसूस होने पर विवाह विच्छेद या पुनर्विवाह भी करती है (बंद दराजों का साथ की नायिका) समग्रतः मन्नूजी नारी स्वतंत्रता के प्रश्न को गंभीरता से उठाती हैं। कदाचित अपनी पीढ़ी में मन्नू जी अकेली लेखिका हैं जिन्होंने नारी को विभिन्न पारिवारिक रिश्तों और व्यापक सामाजिक संदर्भो में अंकित किया है।

मृदुला गर्ग

यौन सम्बन्धों पर 'बोल्ड' रूप में लिखने वाली कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित मृदुला गर्ग रचनात्मक लेखन के साथ–साथ समीक्षा कर्म में भी संलग्न है। इसलिए 'महिला कथा लेखन' को वे एक नए तेवर से बतौर आन्दोलन के रूप में देखती हैं। मृदुला जी नारी की सामाजिक स्थिति तथा उसके विभिन्न रागात्मक धरातलों को गहरी एवं सूक्ष्म संवेदनात्मक दृष्टि और एक निजता से देखती हैं। नारी स्वातंत्र्य का प्रश्न उनके कथा लेखन का आधार बिंदु है जिसके लिए वे हमारी इस दकियानूसी समाज की मध्यकालीन धारणाओं को भी चुनौती देती नज़र आती है।

मृदुला जी का कथा लेखन आठवें दशक के प्रारम्भ से है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास की अपार चर्चा के बाद पाँच और उपन्यास – 'उसके हिस्से का धूप – 'वंशज', अनित्य 'मैं और मैं' 'कठगुलाब' तथा छह कहानी संग्रह–कितनी कैदें' 'टुकड़ा–टुकड़ा आदमी' 'डेफोडिल जल रहे हैं', 'ग्लेसियर से', 'उर्फ सेम' और अब 'शहर के नाम' प्रकाशित हो चुके हैं। मृदुला जी अपनी इन कृतियों में जहाँ नारी के चेहरों पर पुरुष मानसिकता द्वारा थोपे मुखौटे को उतारती हैं वहीं आज के समाज के मूल प्रश्नों से भी सामना करती हैं। अपनी इन कला कृतियों में मृदुला जी जहाँ एक ओर नारी और पुरुष के

संदर्भ में नारी स्वतंत्रता को प्रमुखता देती है वहीं दूसरी ओर समाज के व्यापक क्षेत्र में स्त्री के व्यक्तित्व और स्थिति को लेकर गहरी चिंताएँ भी व्यक्त करती हैं। 'मैं क्या हूँ' ? क्यों हूँ ? इस हालात में क्यों हूँ ? जैसे प्रश्नों पर विचार करती हैं जो आज किसी भी तरह की स्वतंत्रता का पहला सोपान है। लेकिन मृदुला जी के इस चिंतन की ओर लोगों का ध्यान कम ही गया है। इस पर दुःख जताते हुए स्वयं मृदुला जी ने कहा है – "हिन्दी में 'महिला लेखन' पर बहस करने वाले लोगों के लिए सारी बातें 'कामयोनि' पर केन्द्रित हो गई हैं।" उनका कहना है कि अमेरिकी लोगों के लिए जहाँ 'फेमिनिस्ट राइटिंग' एक पूरा आन्दोलन है, यहाँ हर चीज काम केन्द्रित हो गई है। एवरी थिंग इज रेड्युस्ड टु सेक्स।'

निसंदेह, मृदुला जी ने पिछड़ी, थोथी और शोषक नैतिकता के विरूद्ध आवाज उठाकर 'सेक्स' के खुलेपन का चित्रण किया है। 'सेक्स' को पापबोध देने वाली क्रिया न समझकर उसे आज की जीवन स्थितियों (विशेषतः शहरी जीवन स्थितियों) के लिए नैतिक माना है, लेकिन उनके कथा साहित्य में केवल यही नहीं है। नारी के व्यक्ति स्वातंत्र्य के और भी बहुत रूप हैं जिसे लगभग नज़र अंदाज़ कर दिया गया है। नारी के व्यक्ति स्वातंत्र्य से ही जुड़ा प्रश्न उसके मातृत्व के अधिकार का है जिसे मृदुला जी ने 'शहर के नाम' कहानी संग्रह की – 'बाहरी जन' कहानी में उठाया है। भारतीय परिवार व्यवस्था में बच्चा कब और कौन सा (लड़का, लड़की) आए यह अधिकार भी सास–ससुर या पति का रहा है। इस कहानी की नंदिनी इस अहम् सवाल का फैसला खुद करने की आज़ादी चाहती है। ठीक उसी तरह 'कितनी कैदें' कहानी संग्रह की 'मेरा' कहानी की गीता भी इसे निजी मामला समझती है और पति के आदेशों का पालन न करते हुए उससे विद्रोह कर मातृत्व की पूर्ति करती है। इस तरह कहानी स्त्री चरित्र के एक नए आयाम को उद्घाटित करती है।

प्रभा खेतान

'हिन्दी महिला लेखन' में प्रभा खेतान की विशेष पहचान सीमोन द बुवा की पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' के अनुवाद के कारण बनी। 'स्त्री विमर्श के अन्तर्विरोध' 'नारी और दलित' जैसे लेख तथा 'छिन्नमस्ता उपन्यास की बढ़ती लोकप्रियता और चर्चा ने उन्हें शीर्षस्थ महिला लेखिका का दर्जा दिलाया। नारी की मुक्ति का माध्यम है उसका लेखन जो उसकी स्वतंत्रता की आकांक्षा है और आग्रह की अभिव्यक्ति का साधन भी। हिन्दी की लगभग सभी महिला लेखिकाएँ नारी मुक्ति के लिए संघर्षरत तो है, लेकिन स्वतंत्र महिला लेखन नाम से उन्हें परहेज है। प्रभा जी का विचार इस क्षेत्र में अलग है। वे 'स्त्री लेखन' (महिला लेखन) के स्वतंत्र महत्व और विकास पर जोर देती हैं। इस संदर्भ में हिन्दी के पुरुष और स्त्री लेखकों के सम्मुख प्रभा जी का प्रश्न है – "यदि सामाजिक विकास के लिए दलितों और स्त्रियों का विकास अनिवार्य माना जा रहा है तो साहित्य में 'दलित लेखन' और 'स्त्री लेखन' की ओर अलग से ध्यान क्यों नहीं दिया जायेगा।"[४]

प्रभा खेतान मूलतः महानगरीय और उच्च मध्य वर्ग की कथाकार हैं। इसलिए स्त्री अस्मिता का प्रश्न इनके यहाँ इसी दायरे में दिखाई देता है। एक संपूर्ण उपभोक्ता परक आधुनिक शिक्षित समाज के चरित्रों को रखकर उन्हें देखने की कोशिश प्रभा जी की हर कृति में मिलती है। प्रभा जी के इस चिंतन में सीमोन द बुवा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। सीमोन की तरह ही डॉ० प्रभा भी स्त्री की स्थिति में आमूल परिवर्तन चाहती हैं। वे स्त्री को गाय की तरह किसी घर के दरवाजे पर रंभाने और बछड़े के बदले घास का पुतला थनों से सटाये कातर होकर दूध देने का विरोध करती हैं। उनकी नारियाँ 'कुलांचे मारती हिरणी' हैं जो अपने पैरों में किसी भी तरह की बेड़ियाँ पहनाने का सख्त विरोध करती हैं। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया का चरित्र ऐसा ही है जो

४. हंस (संपादक–राजेन्द्र यादव) अक्टूबर, १९९४, पृ० ३६

'स्त्री होने' के जकड़नो के खिलाफ़ निरन्तर संघर्ष करती हुई 'स्वयं' होने तक की यात्रा करती है। वह अपने अनुभव से जीती है और अपने से अलग हटकर उसका विश्लेषण भी करती है। उसकी यह क्षमता उसके बयान को मात्र एक निजी व्यथा कथा नहीं रहने देती, स्त्री की वैश्विक स्थिति के बारे में एक विश्वसनीय बयान बना देती है। जिन्दगी से वह जो पाती है उसे एक चुनौती के रूप में ग्रहण करती है। इसलिए वह स्वयं अपनी स्रष्टा बनती है और इसलिए अंत में बिना किसी क्लेष और विद्वेष के पीछे मुड़कर देखते हुए कह पाती है कि "सब कुछ अच्छा ही हुआ अन्यथा इस चुनौती के बिना मैं अपनी जिंदगी को ऐसे नहीं रच पाती।"[५] इस तरह प्रिया एक उपेक्षित, दब्बू और भोंदू लड़की से एक सुप्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय व्यापारी बन जाती है और अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व जीती है। अपने इस स्वतंत्र व्यक्तित्व में, निजी पहचान की आकांक्षा में प्रिया सर्वस्व को नकारती है और पुरुष वर्ग से उसकी छाया से ही मुक्ति चाहती है। स्त्री चेतना का यह एक नया आयाम है। प्रभा जी का मानना है कि अपनी 'आईडेंडिटी' बनाने के लिए किसी पुरुष के सहयोग की आवश्यकता नहीं है। 'अपने अपने चेहरे' की नायिका का प्रश्न है "क्या बिना पुरुष के औरत इतनी अधूरी है ? क्या सारे अस्तित्व का संदर्भ केवल पुरुष है ? अपने आप में वह कुछ भी नहीं। यानी उसकी अपनी कोई भूमिका नहीं?"[६] प्रभा खेतान की यह चिंता हिन्दी महिला लेखन को एक नई दिशा देती है, लेकिन यह चिंता कहाँ तक ग्राह्य है, यह देखने की बात है।

मैत्रेयी पुष्पा

समकालीन महिला कथा लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा एक प्रतिष्ठा प्राप्त नाम है । 'चिन्हार' कहानी संग्रह, 'गोमा हँसती है' कहानी और 'इदन्नमम' उपन्यास की चर्चा ने इनकी पहचान तेजी से बनाई है। मैत्रेयी पुष्पा की पहचान इस मायने में भी है कि जहाँ

५. प्रभा खेताान – छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम सं० – १९९३, पृ०
६. प्रभा खेतान – अपने–अपने चेहरे, पृ० १८१ (आजकल मार्च १९९६, पृ० ३९ से उद्धृत)

अन्य सभी महिला लेखिकाओं ने महानगरीय जीवन को, प्रेम की विडम्बना को और नैतिक मूल्यों पर पुनर्विचार को मुख्यतः अपनी रचनाओं का विषय बनाया है वहाँ अकेले मैत्रेयी जी ने ग्रामीण परिवेश को कहानियों के केन्द्र में रखकर अपनी कथा यात्रा आरम्भ की है। अन्य सभी प्रतिष्ठित महिला कथाकारों की तरह मैत्रेयी जी भी नारी की प्रचारित और प्रचलित छवि को तोड़कर नारी अस्मिता के प्रश्न को उपस्थित करती है। लेकिन मैत्रेयी जी की विशेषता यह है कि वह उन पात्रों द्वारा नारी अस्मिता के प्रश्न रखती हैं जो न तथा कथित नारी वादी आन्दोलन से जुड़े हैं और जिन्हें न आधुनिक पाश्चात्य चिंतन की जानकारी है। अपितु अपने अनुभव से, अपने जीवन प्रत्यक्ष के वास्तव रूप से उदाहरण प्रस्तुत कर अपना पक्ष सबलता से रखती हैं। आशय यह कि मैत्रेयी जी की नारियाँ जमींन से जुड़ी हुई हैं जो बिना शोर–शराबे ही परम्परागत सामाजिक व्यवस्था पर चोट करती है। अपने एक भाषण में मैत्रेयी जी ने कहा भी है – "नारी स्वतंत्रता का अर्थ नारों और मंचों से अभिव्यक्त होती नारी चेतना नहीं है। यह चेतना नारी के कर्म में होना चाहिए। नारी को पुरुष के स्तर की स्वतंत्रता नहीं, व्यक्ति स्तर की आज़ादी चाहिए – उतनी ही सहज उतनी ही असली और उतनी ही स्थायी।"[७] व्यक्ति स्तर के इस आजादी के लिए मैत्रेयी जी की हर नायिकाएँ संघर्षरत हैं। 'इदन्नमम' की नायिका मंदाकिनी की माँ (प्रेम) का घर आने पर दादी (बऊ) द्वारा किए गए अपमान तथा अस्पताल में सोने के लिए विवश किए जाने पर मंदा प्रश्न उठाती है – "गाँव में छह–आठ जोड़े ऐसे हैं, जिन्होने दूसरा विवाह किया है। माना कि पुरुष हैं तो क्या अम्मा स्त्री होनें के नाते ही दंड की, मखौल की, हेय दृष्टि की भागीदार है। यदि ऐसा नहीं तो उन पुरुषों से अटकले प्रश्न क्यों नहीं पूछता कोई?

७. मैत्रेयी पुष्पा – अभिभाषण

उन्हें क्यों नहीं निकाल देता घर से कोई।"[८] मंदा का यह एक ऐसा प्रश्न है जिसमें नारी मात्र का व्यक्ति स्वातंत्र्य निहित है और उस व्यक्ति स्वातंत्र्य में सदियों से चले आ रहे पुरुष वर्चस्व वाले समाज को चुनौती है। नारी के व्यक्ति स्वातंत्र्य की इस मांग में मंदा हमारी मिथकीय मान्यता – जो वस्तुतः पुरुष प्रधान समाज के अवसरवादी प्रसंग हैं को भी प्रश्नों के कटघरों में खड़ा कर देती है। एक ओर पतिव्रत धर्म की परिभाषा करता राम के साथ सीता का वन गमन, दूसरी ओर उसी निष्ठा को तोड़ता मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सीता की अग्नि परीक्षा लेना। इस पर मंदा की मांग है – "सीता ने क्यों नहीं माँगा कोई सबूत कि हे भगवान कहे जाने वाले राम, तुम भी तो उस अवधि में अलग रहे हो, अपने पवित्र रहने का साक्ष्य दो।"[९]

इस तरह स्पष्ट है कि मैत्रेयी जी ने ग्रामीण परिवेश में ही नारी चेतना को एक नया अर्थ एक नया आयाम दिया है। मैत्रेयी जी की नारी चेतना का यह नया रूख उनकी बहुचर्चित उपन्यास 'इदन्नमम' में ही नहीं, अपितु उनकी समग्र कृतियों में देखा जा सकता है। 'केतकी' कहानी में दुर्दात गंधर्व सिंह को भरी पंचायत में भोली–भाली निरीह केतकी जिस तरह विवस्त्र करती है उससे नई चेतना के प्रति आश्वस्ति का भाव उपजता है। ठीक उसी तरह 'गोमा हँसती है' कहानी भी ग्रामीण नारी चेतना के बदले ग्राफ की कहानी है जो नैतिकता और अनैतिकता के हर पुराने प्रतिमान को तोड़ती हुई अपने लिए नए प्रतिमान गढ़ रही है। वह क्रय वस्तु होने का विरोध करती है, विद्रोह करती है और सामाजिक रिश्तों को दर किनार कर अपने लिए एक अलग दैहिक रिश्ता चुन लेती है।

कृष्णा सोबती

सोबती जी के बारे में अपनी ओर से कुछ कहने के पहले मुझे अश्क जी की ये बातें

८. मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम, किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम सं० १९९४, पृ० २९२
९. मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम, किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम सं० १९९४, पृ० २८९

याद आती हैं – "सिर्फ एक कहानी लेखिका का नाम मेरे जेहन में आता है, जो पुरुष लेखकों के मुकाबले में कहीं से भी कमतर नहीं है – वे हैं कृष्णा सोबती। वे बंधन मुक्त भी हैं, आजाद भी। उनके अनुभवों का क्षेत्र विस्तृत हैं, लेखनी मँज गई है, साहस की भी उनके यहाँ कमी नहीं है।"[१०]

निसंदेह, कृष्णा जी की लेखनी में एक अदम्य साहस है – पुरुष कथाकारों को चुनौती देने का, पारंपरिक मान्यताओं के विरूद्ध आवाज़ उठाने का। नहीं तो संख्या की दृष्टि से इतनी कम कहानियाँ लिखकर भी हिन्दी महिला कथाकारों में सबसे ज्यादा चर्चित और बहस के केन्द्र में वे न होतीं। कृष्णा जी की स्त्री–साहसिकता का सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि उन्होंने नारी के सम्बन्ध में सभी पारंपरिक और आदर्श रूप को तोड़कर उसे 'संगमरमर की मूर्ति' या 'माँस का दरिया' के रूप में प्रस्तुत न कर सबसे पहले उसे व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने अपने पात्रों को पवित्र नहीं चरित्र बनाया।आदर्श की गरिमा और भग्वता से हटाकर उसे यथार्थ और वास्तविकता के धरातल पर उतारा और नारी को एक नई दृष्टि से देखा। उन्होने नारी को नारी की दृष्टि से आँका और एक चुनौती के रूप में उसे युवा पीढ़ी के साहित्यकारों के सम्मुख प्रस्तुत किया।

कृष्णा जी ने कहानियाँ बहुत कम लिखी हैं। उनकी प्रतिनिधि कहानियों का एक मात्र संग्रह 'बादलों के घेरे' हैं जिसमें कुल २४ कहानियाँ है। इस प्रतिनिधि कहानी संग्रह के अतिरिक्त कृष्णा जी की कुछ लम्बी कहानियाँ भी हैं – 'मित्रो मरजानी' 'यारों के यार तीन पहाड़', 'ऐ लड़की' और 'नाम पटि्टका'। हिन्दी महिला कथाकारों के बीच कृष्णा जी यदि अपनी अलग और विशिष्ट पहचान बना पाई हैं और विवाद के केन्द्र में हैं तो वह इन्ही कृतियों की बदौलत। 'मित्रो मरजानी' के प्रकाशन ने एक लम्बे अरसे

१०. वर्तमान साहित्य (कहानी महाविशेषांक) अतिथि संपादक – रवीन्द्र कालिया अप्रैल १९९१, पृ० ३५२

तक हिन्दी में धूम मचा दी थी। यूँ कहिए कि मित्रों को लेकर एक तूफ़ान उठा था। तूफ़ान भी इसलिए कि शालीनता के चादर से अश्लीलता को ढाँप–तोपकर रखने में विश्वास करने वाली हमारी सामाजिक संरचना को मित्रो नंगा कर देती है – अपनी ज़रूरत को अपनी जबान में कहकर। आज तक किसी महिला लेखिका द्वारा ऐसे पात्र की सर्जना नहीं हुई थी जो अपनी शारीरिक भूख का वर्णन इतनी खुली जुबान में कर सके। मित्रो एक ऐसी ही नारी है जो अपनी देह की ज़रूरत को अपनी जुबान से व्यक्त करने का सामर्थ्य रखती है। हिन्दी साहित्य में पहली बार मित्रो ने पुरुष सत्तात्मक समाज में पुरुषों द्वारा दी गई अपनी सामाजिक छवि को निडर हो उतार फेंका है, मूल्य मर्यादाओं की पुरानी नीवों, शहतीरों को हिला दिया है। इस तरह "मित्रो ने अपनी मूल संवेदना में विवेक जगाया है – पुरानी नैतिकता के छद्म को उघाड़ा है और जुर्रत से अपने होने के अधिकार को जगाया, मर्यादा को जताया है।"[११]

लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि अपनी इस नारी चेतना में कृष्णा जी ने कहीं भी पुरुष को अपराधी बताकर औरत की स्थिति का वर्णन नहीं किया है और न ही उसके व्यक्तित्व और नियति के लिए पुरुष को जिम्मेदार माना है। तस्लीमा नसरीन या बहुत सी परवर्ती लेखिकाओं (प्रभा खेतान आदि लेखिकाओं जिनका जिक्र हमने ऊपर किया है) की तरह कृष्णा जी ने शेखी और ज़िद में पुरुष के प्रति अपमानित दृष्टि भी नहीं रखा है। उनकी सभी प्रमुख नारी पात्र चाहे वह 'बादलों के घेरे' की नारियाँ हो या 'ऐ लड़की' की नारियाँ सभी कृष्णा जी का ही प्रतिनिधित्व करती नज़र आती हैं जो अपने जीवन संघर्ष में अकेली हैं, अपनी लड़ाई खुद लड़ती हैं, जिन्दगी के निर्णय खुद लेती हैं और उन निर्णयों का परिणाम भी स्वयं भुगतती हैं। बावजूद इसके इन नायिकाओं में कहीं भी पुरुष पात्रों के प्रति आक्रोश खीज या विद्रोह नहीं है। महिला

११. समकालीन भारतीय साहित्य – संपादक–गिरधर राठी, जनवरी–मार्च १९९१, पृ० १८६

कथाकार होने के बावजूद कृष्णा जी का यह रूख नया है। "पुरुष पात्रों के प्रति जिस तरह का दुलार भरा सम्मान उनकी नारियाँ अपने में पाती हैं उसे देखकर लगता सिर्फ इतना है कि मानवीय लगाव के प्रति उनके मन में गहरी बहुत गहरी आस्था है/ उनमें रिजैक्शन और अस्वीकार कहीं नहीं है, सिर्फ अपने विकसित और प्रस्फुटित होने के प्रति ही एकान्त निष्ठा है/ बाकी कुछ भी न उनके लिए प्रासंगिक है न उसका कोई अस्तित्व है।"[१२]

वास्तव में जिन्दगी में पुरुष की आवश्यकता को कृष्णा जी कभी भी नज़र अंदाज़ नहीं करती हैं। यही कारण है कि उनकी नारियाँ पुरुष मात्र के प्रति विद्रोही दिखने के बजाय (जैसा कि अन्य महिला कथाकारों में दिखाई देता है) पुरुष और नारी के समन्वित रूप को लेकर चलती हैं। लेखिका की एक बहुचर्चित कहानी 'ऐ लड़की' जो नारी चेतना की एक सशक्त कड़ी है और जिसमें आज की नारी के आत्मबोध का पैनापन बखूबी सामने आया है में इस तथ्य को बड़ी सहजता से उभारा गया है। उनकी सम्पूर्ण कथा यात्रा से गुजरते हुए हमें यही दिखता है कि व्यवस्था को बिना तोड़े ही कृष्णा जी के चरित्र अपनी जगह बना लेते हैं जिसका कोई जवाब नहीं। लेकिन चूँकि सोबती जी के चरित्र भी उन्हीं की तरह असाधारण व्यक्तित्व को लिए हुए हैं अतः "तेजमयी नारी शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से पूर्ण सुदृढ़ होकर आदर्शो को ठोकर मारती हैं" जिसके कारण उनके चरित्र भी कठोर एवं उग्र रूप में दिखते हैं। जो लेखिका इतना बोल्ड व्यक्तित्व रखती हो उसके नारी पात्र यदि थोड़ा सा बोल्ड हो जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं। अगले अध्याय 'कृष्णा सोबती की कहानियों में स्त्री चेतना के विविध आयाम' में हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

१२. राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं० १९८० पृ० – ४२

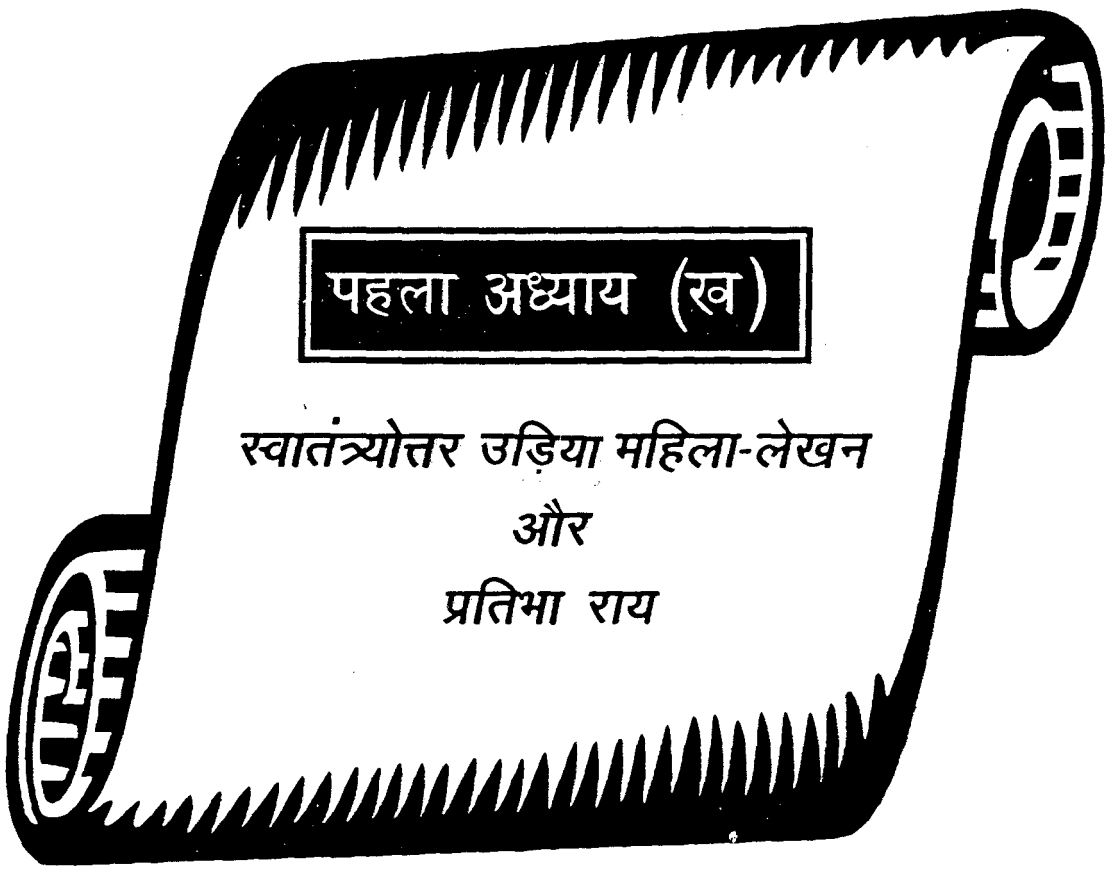

पहला अध्याय (ख)

स्वातंत्र्योत्तर उड़िया महिला-लेखन
और
प्रतिभा राय

'स्वातंत्र्योत्तर उड़िया महिला लेखन' पर कलम चलाने से पहले एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि हिन्दी साहित्य की तरह उड़िया साहित्य जगत में न तो 'दलित चेतना' एक आन्दोलनात्मक रूप ले सका है और न 'स्त्रीचेतना'। यही वज़ह है कि हिन्दी साहित्य की तरह उड़िया साहित्य जगत में 'स्त्री–लेखन' (महिला लेखन) जैसा कोई स्वतत्र लेखन भी अभी तक नहीं उभर सका है। यह बात नहीं है कि स्त्री सम्बन्धी नई सोचों से हमारी लेखिकाएँ अनभिज्ञ हैं, लेकिन पारंपरिक नारी छवि–सतीत्व, मातृत्व और पत्नीत्व से अधिकांश लेखिकाएँ अभी तक उभर नहीं सकी है। पुरुष सत्तात्मक समाज ने जिस फ्रेम में नारी की तस्वीर जड़ी है उससे बहुत ही कम लेखिकाएँ बाहर निकल पाई हैं। ऐसे लेखिकाओं में श्रीमती वीणापाणि महांति, विजयिनी दास, प्रतिभा राय आदि कथा लेखिकाओं का नाम महत्त्वपूर्ण है। यशोधरा मिश्र, सरोजिनी साहू, कविता बारीक आदि लेखिकाओं में स्त्री चेतना की कुछ झलक अवश्य मिल जाती है लेकिन 'स्त्रीत्व' की पहचान की लड़ाई अभी तक उनमें नहीं आ पाई है। इन लेखिकाओं की नारियाँ व्यक्तित्व उपार्जन के बावजूद पारंपरिक नारी गंध से अभी पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाई है। इसलिए स्त्री चेतना का जो स्वरूप, 'स्त्रीत्व' की पहचान की लड़ाई का जो रूप वीणापाणि महांति, विजयिनी दास और प्रतिभा राय में दिखाई देता है, वह इन लेखिकाओं में लगभग न के बराबर है। उड़िया महिला लेखन के प्रस्तुत चर्चा में हम वीणापाणि महांति,विजयिनी दास और प्रतिभा राय के कथा साहित्य को ही अपना आधार बनायेंगे।

वीणापाणि महांति

वर्ष १९९१ की साहित्य अकादमी पुरस्कार विजयिनी श्रीमती वीणापाणि महांति सन् साठ के बाद की उड़िया महिला कथाकारों में एक प्रतिष्ठित नाम है। अब तक अट्ठारह

कहानी संग्रह में लगभग चार सौ कहानियों की रचना कर उन्होंने उड़िया कथा साहित्य को समृद्ध किया है। श्रीमती महांति ने आधुनिक समाज की नग्न वास्तविकता को अपनी कहानी में उकेरा है। समाज में नारी किस तरह पुरुषों के अत्याचार से पीड़ित है, किस तरह उसके देह के साथ खिलवाड़ हो रहा है और किस तरह वह इन सबसे मुक्ति के लिए छटपटा रही हैं इन सबका चित्रण महांति जी ने बड़े ही साहस के साथ किया है। लेकिन ध्यान देने की बात है कि श्रीमति महांति ने अपने कथा साहित्य में स्त्री मुक्ति का केवल संकेत भर दिया है, उस अत्याचार से खुलकर निपटने के लिए नारी को कहीं भी खड़ा नहीं किया है। इस संदर्भ में महांति जी का स्वयं का कथन है – "वर्तमान समाज में गाँव से लेकर शहर तक नारी स्वाधीनता की स्वीकृति और नारी को शोषण मुक्त करने के लिए प्रयास जारी है। फिर भी जगह–जगह वह उत्पीड़न का शिकार हो रही है। इस उपन्यास में मैंने केवल उसकी सूचना देने की कोशिश की है। बंदीशाला से मुक्त होने के लिए किसके सामने कौन सा मार्ग खुला रहता है उसका सटीक आभास निश्चित रूप से कोई नहीं दे सकता है। लेकिन आज की नारी चेतना इस अमानुषिक अत्याचार का मुकाबला कर सकती है। अपने को उत्सर्ग कर अपनी भावी पीढ़ी की मुक्ति के लिए आज की नारी निर्भिक रूप से मशाल हाथ में ले लेंगी, यह मेरा विश्वास है।"[१]

पुरुष सत्तात्मक समाज के अत्याचार को चुनौती देने का साहस श्रीमती महांति की नायिकाओं में कम ही दृष्टिगोचर होता है। लेकिन फिर भी उनकी नायिकाओं में चेतना नहीं है यह कहना सरासर ग़लत है। 'पाटदेई' कहानी में विषमता के विरूद्ध जो आवाज़ है उसमें नारी चेतना की स्पष्ट झलक मिलती है। ठीक उसी तरह 'तटनी र तृष्णा' 'छबि' आदि कहानियों में स्त्री स्वच्छन्दता और उसकी स्वाधीनता का रूप दिखाई देता

१. वीणापाणि मंहाति – कुंती कुंतला शकुंतला, फ्रेण्डस पब्लिसर्स, कटक, प्रथम सं० १९८४, पृ०– अपनी बात (क)

है। यह ठीक है कि 'स्त्रीत्व' की पहचान की लड़ाई का जो रूप प्रतिभा राय और विजयिनी दास में है, वह श्रीमती वीणापाणि महांति में नहीं है, फिर भी मैं इसे श्रीमती महांति जी का कलम पकड़ने का साहस कहूँगा, क्योंकि यही वह प्रस्थान बिंदु है जिसके सहारे हमारी उपरोक्त लेखिकाओं ने 'स्त्रीत्व' की पहचान की लड़ाई – उसकी अस्मिता की लड़ाई लड़ी है।

विजयिनी दास

नारी के व्यक्ति स्वातंत्र्य और उस स्वतंत्रता के लिए निरंतर संघर्ष करने वाली लेखिकाओं में विजयिनी दास का नाम महत्वपूर्ण है। उड़िया महिला कथाकारों में संभवतः श्रीमती दास एक मात्र लेखिका हैं जो नारी मुक्ति को बतौर एक आन्दोलन के रूप में देखती हैं। नारी मुक्ति, उसकी स्वाधीनता श्रीमती दास के लिए बैठक खाने की विलास मात्र नहीं है। इस मुक्ति के लिए वे संघर्ष करती भी दिखाई देती हैं। उनकी 'डायरी' उपन्यास की अनुराधा स्वाधीन चेता स्वाभिमानी नारी है जो पुरुष समाज के प्राधान्य और उसके शोषण के विरूद्ध आजीवन संघर्ष करती है। इस संदर्भ में अनुराधा का स्वयं का कथन है – "पुरुष सृष्टि के चक्रव्यूह में मैं एक निरुपाय और निरस्त्र अभिमन्यु हूँ। संग्राम करने के अलावा मैं कुछ और नहीं कर सकती। हो सकता है मेरा संपूर्ण जीवन इस चक्रव्यूह से मुक्ति पाने के लिए रास्ता ढूँढ़ने में ही निकल जायें लेकिन मैं चक्रव्यूह में रहूँगी।"[२]

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है अनुराधा का सम्पूर्ण संघर्ष नारी मात्र की स्वाधीनता और उसके निजत्व के लिए है। अनुराधा की इच्छा है – "हमारे बाद जो जन्म लेंगे वे जन्म से ही स्वाधीनता और निजत्व का मुकुट पहनकर इस पृथ्वी को आएँगे, सहज गति से ठीक पानी, पवन और आलोक की तरह।"[३] अपनी इसी चाह को

२. विजयिनी दास – डायरी, उड़ीसा बुक स्टोर, कटक प्रथम सं० १९८९, पृ० ९६
३. विजयिनी दास – वाग्दत्ता, नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक प्रथम सं० १९८६, पृ० – १६९

लिए अनुराधा सर्वगुण सम्पन्न होने के बावजूद अपने विवाह प्रस्ताव को बार–बार ठुकरा देती है (क्योंकि विवाह को वह दासत्व की बेड़ी मानती है) और नारी मुक्ति को उसकी स्वालम्बनशीलता में देखती है। ऐसा नहीं है कि विवाह करने की इच्छा अनु को न हुई हो, लेकिन दहेज की माँग के कारण अपने लिए आए प्रस्ताव को वह बार–बार ठुकरा देती है। अंत में वृद्ध पिता की खुशी के लिए बिना दहेज के वह विवाह को स्वीकार तो करती है लेकिन दासत्व ही यह श्रृंखला अनु को बाँध नहीं पाती है। अपने स्वाभिमान का हनन होते देख परंपरा और नीति नियम के दीवाल को तोड़कर अनु निकल पड़ती है एक मुक्त पृथ्वी में, जहाँ उसका परिचय उसके निजस्व में है किसी की बहू या पत्नी के रूप में नहीं।

निजस्व की यही भावना श्रीमती दास के वाग्दत्ता उपन्यास की नायिका नवनीता में भी है। नवनीता उज्ज्वल नारीत्व का दीप्तिमान शिखर है जो पुरुष की निष्ठुर उपेक्षा का खुलकर विद्रोह करती है और इस विद्रोह में नारी मात्र की स्वाधीनता की मांग करती है। समाज में स्वाधीनता का अधिकार केवल पुरुष वर्ग को है, वह कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र है, लेकिन नारी नहीं – ऐसा नवनीता को मान्य नहीं है। नवनीता डाक्टर है। अतः घर लौटते–लौटते कभी–कभी रात हो जाती है। इस पर नवनीता का पति उसे संदेह भरी दृष्टि से देखता है और नवनीता को नौकरी छोड़ने का आदेश देता है लेकिन नवनीता अपनी स्वाधीन सत्ता को नहीं भूलती है। इस मन मुटाव में वह अपने पति को तलाक देती है और स्वाधीन होकर जीवन बिताती है।

इस तरह स्पष्ट है कि श्रीमती विजयिनी दास के स्त्री सोच में उन्मुक्त प्रखरता है जिसके कारण परारंपरिक तिलिस्म को तोड़ती हुई वे नारी को एक नए रूप में देखती है। निसंदेह उड़िया महिला कथाकारों में – नारी मुक्ति के लिए संघर्षरत कथाकारों में श्रीमती विजयिनी दास एक स्मरणीय नाम है।

प्रतिभा राय

उड़िया महिला कथाकारों में डॉ० प्रतिभा राय एक चिर परिचित नाम है। उड़िया कथा साहित्य को कलात्मक ऊँचाई देने और उसे समृद्ध करने में प्रतिभा जी का महत्वपूर्ण योगदान है। यूँ तो उड़िया कथा साहित्य में महिला कथाकारों की एक लम्बी श्रृंखला है जिनमे नंदिनी शतपथी, वीणापाणि महांति, सुधांशुबाला पण्डा, मानसीदास, ममतादास, विजयिनी दास, सरोजिनी साहू , यशोधरा मिश्र, इंदु मिश्र, पुष्पा महांति, गीता होता जैसे कई उल्लेखनीय नाम हैं लेकिन प्रतिभा जी ने अपनी प्रतिभा के बदौलत अपनी एक ख़ास और विशिष्ट पहचान बनाई है। "प्रतिभा जी उन महिला कथाकारों में भी अग्रणी हैं जो भारतीय महिलाओं के सम्मान और स्वभाव से ही जीने की बात नहीं करती, बल्कि समान भागीदारी की जोरदार आवाज़ भी उठाती हैं।"[४] ऐसे अवसरों पर प्रतिभा जी सीमोन द बोऊवा की तरह नारीवादी आन्दोलन चलाती सी प्रतीत होती है। लेकिन प्रतिभा जी की विशेषता यह है कि वे नारी के विरोध को भी ऐसे जनतांत्रिक तरीके से दर्ज़ कराती हैं कि उनकी एक अलग और विशिष्ट छवि बन जाती है।

'साँसों की तरह लेखन को भी जीवन का अभिन्न अंग' मानने वाली डॉ० प्रतिभा राय की प्रतिभा का परिचय उनका विपुल और विशाल साहित्य है। अब तक उन्होंने सोलह उपन्यास और अट्ठारह कहानी संग्रह की रचना कर उड़िया कथा साहित्य को समृद्ध किया है। उनका 'जाज्ञसेनी' उपन्यास (१९८५) जो 'द्रौपदी' के नाम से हिन्दी में अनूदित है और जिसे वर्ष १९९३ का 'मूर्तिदेवी सम्मान' प्राप्त है 'नारीत्व का आह्वान है। द्रौपदी यहाँ महज पौराणिक पात्र न होकर वर्तमान नारी आन्दोलन की सूत्रधार प्रतीत होती है। प्राक् स्वाधीनता के समय हरे कृष्ण महताब के 'प्रतिभा' उपन्यास (१९३०) की

४. समकालीन भारतीय साहित्य, संपादक–गिरधर राठी, जनवरी–मार्च १९९४, पृ०– १८८

नायिका प्रतिभा या फिर बासन्ती उपन्यास (१६३१) की नायिका बासन्ती में स्त्री स्वाधीनता को लेकर जो आन्दोलनात्मक स्वर सुनाई दिया था, वह लम्बे अन्तराल के बाद प्रतिभा जी के प्रस्तुत उपन्यास में तीव्रता के साथ प्रकट हुआ है। भर–पूर कुरु राज सभा में जहाँ आर्यव्रत के सभी श्रेष्ठ और ज्ञानी गुण सम्पन्न सदस्य उपस्थित हैं जाज्ञसेनी (द्रौपदी) अन्याय के विरूद्ध स्वर मुखरित करती है – "मैं किसी से दया की भीख नहीं माँगती, न्याय माँगती हूँ। नारी के सम्मान की रक्षा करना राजधर्म है। फिर अपने वंश की कुलवधू की अमर्यादा करना क्या कुरू राजाओं को शोभा देता है? मैं जानना चाहती हूँ मेरे पति का स्वयं के हार जाने के बाद मुझे दाँव पर रखना क्या उनका न्याय संगत कार्य है। ?"[५]

जाज्ञसेनी के इस प्रश्न से समग्र कुरुसभा निर्वाक और निस्पन्द है। गुरूजनों से ऐसी दृढ़ता के साथ कैफ़ियत माँगने का साहस रखने वाली ऐसी दृढ़ नारी का सृजन उड़िया महिला कथाकारों में केवल प्रतिभा जी के कलम से ही सम्भव था। जाज्ञसेनी यहाँ पारंपरिक नारी से अलग प्रतिभा जी का ही प्रतिनिधित्व करती नज़र आती है जो इस समाज में अन्याय, अनीति और अत्याचार को जला देना चाहती है, मिटा देना चाहती है। वास्तव में हमारे पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी की दयनीय स्थिति ने प्रतिभा जी को उत्प्रेरित किया है। यही कारण है कि बार–बार इस पुरुषोचित समाज को प्रतिभा जी प्रश्नों के कटघरे में ले आती हैं। जाज्ञसेनी का ही प्रश्न है – "सती नारी, 'असती नारी', इसी तरह 'सत–पुरुष' – असत पुरुष शास्त्रों में क्यों नही हैं ? पुरुष का हृदय क्या सोने का बना है? क्या कभी पाप स्पर्श कर मलीन होता ही नहीं? क्या केवल नारी के लिए ही पाप की सूची बनाई गई है ?"[६]

५. प्रतिभा राय – जाज्ञसेनी, नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक, प्रथम सं० १६८५, पृ० १७२
६. प्रतिभा राय – जाज्ञसेनी, नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक, प्रथम सं० १६८५, पृ० १०७

जाह्नसेनी के उपरोक्त प्रश्न के माध्यम से प्रतिभा जी ने शास्त्रानुमोदित समाज व्यवस्था पर हमला तो किया ही है, नारी मात्र की स्वाधीनता, पुरुष के साथ उसकी समानता को भी रेखांकित किया है। नारी की पारंपरिक जीवन धारा और उसके साथ पुरुष दृष्टि में एक विप्लवकारी परिवर्तन के सूत्रपात के लिए प्रतिभा जी ने यह कदम उठाया है। उपन्यासों की तुलना में कहानियों में प्रतिभा जी का यह स्वर और भी मुखर हो उठा है। अपनी 'ट्रलीवाली' कहानी में प्रतिभा जी ने न केवल पुरुष सत्तात्मक समाज को करारा तमाचा दिया है अपितु पुरुषों द्वारा बनाई गई सांस्थानिक बंधन (विवाह संस्था) को ही निडर हो उतार फेंका है। एक भारतीय नारी को शानपूर्ण जिंदगी जीने के लिए विवाह संस्था को अनिवार्य माना गया है। लेकिन 'ट्रलीवाली' की नायिका ने यहाँ अच्छा विद्रोह किया है। जिन्दगी को शान से जीने के लिए उसने इस सांस्थानिक बंधन को अनिवार्य नहीं माना है और न ही मातृत्व के गौरव के लिए पति की अनिवार्यता को ज़रूरी समझा है। ट्रलीवाली का कथन है – "पति के न होते हुए माँ बनने में समाज का प्रतिबंध क्यों ? ..... पशु–पक्षियों में विवाह नहीं होता क्या उनमें माँ का स्नेह नहीं होता ?"[७]

DISS 0,152,3,N2,S:g(Y,15)
TH-6751 152N7

वास्तव में प्रतिभा जी की यह नायिका पुरुष सत्तात्मक समाज से खिन्न है। अपनी माँ तथा पड़ोस की स्त्रियों पर पुरुष के बढ़ते अत्याचार को देखकर वह इस सांस्थानिक बंधन को ही नकारती है और घोर दरिद्रता के बावजूद, लड़की होकर भी ट्रली चलाती है। इसके लिए वह किसी पुरुष से दया की भीख नहीं माँगती। जिन्दगी को कैसे जीना है, किस तरह से जीना है इसका निर्णय भी खुद लेती है और विवाह संस्था जैसे सांस्थानिक बंधन से मुक्त होकर भी पाँच–पाँच बच्चों की माँ बनती है। ऐसी नायिका का सृजन कर प्रतिभा जी ने अपनी स्त्री चेतना का परिचय तो दिया ही

७. प्रतिभा राय – हरित पत्र, नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक, दूसरा सं० १९९२, पृ०– १०६

है पुरुष वर्चस्व वाले समाज को भी चुनौती दिया है। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि अपनी इस नारी चेतना में प्रतिभा जी ने पुरुष की सहभागिता को नज़रअंदाज़ नहीं किया है। नारी की आत्म सजगता, उसकी अस्मिता की लड़ाई को लिए प्रतिभा जी की यह नायिका यद्यपि पुरुष सत्ता को अस्वीकार करती है, लेकिन जीवन में पुरुष के संग साथ को वह अनिवार्य मानती है। इस संदर्भ में ट्रलीवाली का कथन है – "अच्छा खाना खाने से, अच्छे कपड़े पहनने से ही मनुष्य का मन पूरा नहीं होता। भगवान ने स्त्री पुरुष का निर्माण क्यों किया है – एक दूसरे को कुछ तो सुख देता होगा। माँ इतनी मार खाकर भी बप्पा का आदर करती थी – क्या बिना सुख के ? माँ की इस दुखभरी जिन्दगी में बप्पा कभी–न–कभी सुख अवश्य देते होंगे। इसलिए नारी पुरुष को खोजती है और पुरुष नारी को। भोजन और कपड़े की तरह दोनों–दोनों के लिए आवश्यक हैं।"[८]

ट्रलीवाली ही नहीं प्रतिभा जी की लगभग सभी नायिकाओं में यह भावना विद्यमान है। प्रतिभा जी यह मानती हैं कि स्त्री सांस्थानिक बंधनों से मुक्त तो हो सकती है लेकिन पुरुष के बिना जिन्दगी बिताना उसके लिए संभव नहीं है। नारी प्रगति का अर्थ प्रतिभा जी के अनुसार पुरुष से प्रतियोगिता नहीं है बल्कि उसके संग–साथ में है। यही कारण है कि अपनी कहानियों में प्रतिभा जी पुरूष–पात्रों के प्रति संवेदनशील दिखती है। अपने एक साक्षात्कार में प्रतिभा जी कहती भी हैं – "नारी की अपेक्षा पुरुष के प्रति मैं कम संवेदनशील हूँ ऐसा मैं नहीं सोचती। मेरे लेखन में सदैव मनुष्य की जिजीविषा की समस्या रूपायित हुई है। नारी की समस्या अधिक होने के कारण मैं यदि नारी के प्रति अधिक संवेदनशील दिखती हूँ तो इसका यह अर्थ नहीं कि मैं एक नारी हूँ। बल्कि एक स्रष्टा की हैसियत से मैं मनुष्य के दुःख में समदुःखी हुई हूँ।"[९] नारी की हिमायत में, उसकी स्वतंत्रता और अस्मिता की लड़ाई में प्रतिभा जी ने यदि कहीं पुरुष जाति से प्रतियोगिता किया भी है (जैसा

८. प्रतिभा राय – हरित पत्र, नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक, दूसरा सं० १९९२, पृ०– १०६
९. सारांश – जनवरी–फरवरी – १९९३, पृ०–२

कि 'फेराए' और 'उल्लग्न' कहानी में दिखाई देता है) तो भी वह विद्रोह और प्रतियोगिता पुरुष जाति के प्रति अनास्था भाव से नहीं समता अर्जन के लिए आत्म संघर्ष से है। वैसे उनकी अधिकांश नारियों का संसार स्त्री–पुरुष का समवेत संसार ही है।

प्रतिभा जी की कहानियों की एक और विशेषता यह है कि प्रतिभा जी स्त्री को उसके पूरे सामाजिक संदर्भो के बीच अंकित करती है। उनकी कहानियों में नारी जहाँ एक ओर घर–गृहस्थी वाली हैं, वहीं वे भी हैं जो दफ़्तरों में काम करती हैं, किसी की प्रेमिका है और पत्नी भी। जहाँ तक घर गृहस्थी के नारी पात्र का सवाल है उनमें 'ट्रलीवाली', –फेरार' – 'उल्लग्न' आदि कहानियों की तरह मुखर विद्रोह न होकर एक तरह से आदर्श की प्रधानता है। यद्यपि प्रतिभा जी सीता और द्रौपदी में द्रौपदी को पहला स्थान देती है (वह इसलिए कि द्रौपदी सीता की भाँति अन्याय व अत्याचार को चुपचाप सहन नहीं करती, उसका प्रतिवाद करती है) लेकिन उनकी अधिकांश कहानियों की नायिकाएँ द्रौपदी का अनुकरण न कर सीता का ही अनुकरण करती नजर आती है। आशय यह कि एक 'आदर्श भारतीय नारी' की चाह उनकी लगभग हर नायिकाओं में दिखाई देती है। 'पाचेरी' कहानी की मीना हो, 'वृत्त' कहानी की शोभिता हो, 'स्त्री' कहानी की सुभद्रा हो या फिर 'विधुर दाम्पत्य मधुर आस्वाद' की मीरा हो सभी में यह चाह तीव्र से तीव्रतर है। लेकिन यह आदर्शप्रियता प्रतिभा जी को एक सीमा तक ही स्वीकार्य है।सीता की भाँति सहिष्णु और सर्वसहा होना उन्हें मान्य नहीं है। प्रतिभा जी 'जाज्ञसेनी' (द्रौपदी) उपन्यास की नायिका जाज्ञसेनी के इस कथन से पूर्णतः सहमत हैं – "मैं सीता की तरह सहिष्णु सर्वसहा नहीं हूँ। आवश्यकता होने पर मैं विप्लव भी कर सकती हूँ।"[१०] परिवेश और परिस्थिति के अनुरूप प्रतिभा जी की नारियाँ यद्यपि सीताजी का अनुकरण करने के लिए बहुत हद तक बाध्य हैं तो भी अपने अधिकार के प्रति वे

१०. प्रतिभा राय –जाज्ञसेनी, नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक, प्रथम सं० – १९८४, पृ० –७३

जागरूक हैं । अतः आदर्श की गरिमा साथ लिए हुए भी अपनी अस्मिता की पहचान के लिए वे प्रयासरत हैं। सही मायनों में प्रतिभा जी उड़िया की एक मात्र लेखिका हैं, जिन्होंने नारी मन को सही ढंग से समझा है, उसे नए तरीकों से तराशा है और उसकी अस्मिता की हिमायत में खड़ा होने का साहस किया है। अगले अध्याय में 'प्रतिभा राय की कहानियों में स्त्री चेतना के विविध आयाम' के क्रम में हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

❖ ❖ ❖

दूसरा अध्याय (क)

कृष्णा सोबती की कहानियों मे स्त्री-चेतना के विविध आयाम

'आधुनिक हिन्दी कहानी : नारी चेतना मर्द आलोचना' लेख में मृदुला गर्ग ने लिखा है "समकालीन कथा साहित्य पर कोई भी चर्चा तब तक पूर्ण व सार्थक नहीं हो सकती– जब तक उसमें नारी चेतना से प्रेरित कथा सृजन को यथोचित स्थान न दिया जाय। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, नए भाव–बोध से उत्प्रेरित साहित्य की रचना में सबसे महत्वपूर्ण हाथ 'दलित चेतना' व 'नारी चेतना' का रहा है। यह केवल हिन्दी या भारत का नहीं, पूरे विश्व का सत्य है।"[१] आख़िर यह 'दलित चेतना' और 'नारी चेतना' है क्या? मृदुला जी लिखती हैं – "चेतना का सम्बन्ध निजी जीवन दृष्टि से होता है, जिससे परख कर इतिहास, संस्कृति और मानवीय सम्बंधों को पुनः विश्लेषित किया जाता है। ज़ाहिर है कि इस प्रक्रिया में किसी न किसी रूप में यथास्थिति बदलती है। अतः हम कह सकते हैं कि जो दृष्टि नारी की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक छवि के तिलिस्म को तोड़े वह नारी चेतना है और जो दलितों की छवि के तिलिस्म को तोड़े वह दलित चेतना है।"[२]

मृदुला जी के उपरोक्त परिभाषा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि 'स्त्री–चेतना' का सम्बंध किसी लिंग विशेष से न होकर भावबोध और जीवन दृष्टि से है जिसे स्त्री–पुरुष कोई भी रच सकता है। निसंदेह, 'स्त्री–चेतना' का सम्बंध दृष्टि से है जो पुरुषों में भी हो सकती है। लेकिन 'स्त्री–चेतना' से यहाँ हमारा आशय 'स्त्री–लेखन' (महिला लेखन) में डेढ़ दशकों से आए स्वचेतना से है। अर्थात् 'स्त्री–लेखन' में एक स्त्री की जो स्वचेतना प्रवाहित हो रही है वही स्त्री चेतना है। यह ठीक है कि स्त्री की दयनीय दशा का, उसके जीवन संघर्ष का चित्रण अनेक पुरुष लेखकों ने भी किया है जो कई बार प्रभावशाली भी बना है, लेकिन वह रचना दृष्टि करूणा से उपजी हुई

१. हंस – (संपादक–राजेन्द्र यादव) मई १९९३, पृ० ४
२. हंस – (संपादक–राजेन्द्र यादव) मई १९९३, पृ० ४

सहानुभूति तक ही सीमित है। उसमें आत्मानुभूति की आग और बेचैनी नहीं है। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा ने ठीक ही लिखा है– "पुरुष के द्वारा नारी का चरित्र अधिक आदर्श बन सकता है परन्तु अधिक सत्य नहीं, विकृति के अधिक निकट पहुँच सकता है परन्तु यथार्थ के समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है परन्तु नारी के लिए अनुभव। अतः उसके जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी, वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरान्त भी शायद ही दे सके।"[३] महादेवी वर्मा के उर्पयुक्त कथन के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि 'नारी में नारीत्व की सजग चेतना' ही 'स्त्री चेतना' है और इसका प्रामाणिक चित्रण कोई स्त्री ही कर सकती है। 'स्त्री चेतना' के इसी अर्थ को ग्रहण करते हुए हम प्रस्तुत अध्याय 'कृष्णा सोबती और प्रतिभा की कहानियों में स्त्री चेतना के विविध आयाम' की जाँच पड़ताल करेंगे। पहले सोबती की कहानियों में स्त्री–चेतना के विविध आयाम :–

-:स्त्री आदर्श मोहभंग एवं मुक्ति की चेतना:-

आज की नारी प्राचीन कालीन नारी की तरह आदर्शों में जकड़ी दिखाई नहीं देती। वरन् प्राचीन व्यवस्था से संघर्ष करती हुई पहले से कहीं ज्यादा स्वच्छन्द और प्रभावशाली व्यक्तित्व को लेकर प्रस्तुत हुई है। अपने यथार्थ से जैसे–जैसे वह वाकिफ़ होती गई, उसका अपने आदर्श रूप के प्रति भी मोहभंग होता गया है। यही कारण है कि आज का कहानीकार भी नारी को उसकी यथार्थता में देखने में प्रयासरत है। आधुनिक महिला कथाकारों में कृष्णा सोबती एक ऐसी ही लेखिका हैं, जिन्होंने नारी को आदर्श की गरिमा और भग्वता से हटाकर उसे यथार्थ के भावभूमि पर प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने पात्रों को पवित्र नहीं चरित्र बनाया है। यही कारण है कि नारी आदर्श के

३. महादेवी वर्मा – श्रृंखला की कड़ियाँ, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं० १९४२ पृ० ७४

प्रति पूर्णतः मोहभंग इनकी कहानियों में दिखाई देता है। सोबती लेखिका होने के साथ–साथ ऐसी नारी आँखें भी लिए हुई हैं जिसमें भारत की सामान्यतया नारी से भिन्न बिल्कुल भिन्न नारी का अर्थात् आँसू–विगलित, प्रताड़ित पति या समाज की मार सहकर अन्दर ही अन्दर घुटने वाली नारी से भिन्न उन्मुक्त विचारों वाली नारी का–अपने जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली नारी का चित्र खींचा है। यहाँ नारी गृहस्थ जीवन की तनावग्रस्त जीवन से छुटकारा पाने की इच्छा के साथ–साथ 'सेक्स' व 'रोमांस' से भी मुक्ति चाहती हैं। 'सेक्स' को पवित्र बंधन से जोड़कर असंतुष्टि की आग में झुलसते रहना इन्हें मान्य नहीं है। 'दो राहे दोबा' की कुंतल, 'कुछ नहीं कोई नहीं' की शिवा तथा 'मित्रो मरजानी' की मित्रो इसका उदाहरण है। पवित्रता, नैतिकता आदि को नकारते हुए कुंतल जो शोभन की पत्नी है गुप्ता नामक पुरुष से शारीरिक सम्बंध स्थापित करती है– "कुंतल नई हो कपडे बदल कमरे से बाहर आई कि गुप्ता ने आगे बढ़ बाँहों में भर लिया और धीमे से संकेत कर कहा 'शोभन' और जल्दी से अलग हो बाहर हो गए।"[४] ठीक उसी प्रकार मित्रो भी सारे परंपरागत मान्य आदर्श और सारे नैतिक मान्यताओं को अस्वीकार करती हुई अपनी देह की ज़रूरत को अपनी जुबान से कहती है– "अब तुम्हीं बताओं जिठानी, तुम–जैसा सत–बल कहाँ से पाऊँ–लाऊँ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। बहुत हुआ हफ़्ते पखवारे.....और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास कि मछली–सी तड़पती हूँ।"[५] वास्तविकता से भरी इस पूरी कहानी में मित्रो का व्यक्तित्व उन सभी आदर्श मान्यताओं के विरूद्ध जाता है जिसमें एक पति से संतुष्टि का भाव हो या पति–परमेश्वर जैसी परिकल्पना

४. कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं० १९८०, पृ० १८१
५. कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा सं० १९९४, पृ० १९

हो। मित्रो के लिए यहाँ यह कथन बहुत ही सटीक जान पड़ता है कि –"मित्रो न तो रवीन्द्र की ओस जैसी नारी है न शरत और जैनेन्द्र की विद्रोहिणी गुत्थी। इसे आदर्श का मोह नहीं है, न समाज का भय है और न ईश्वर का।"[६] यानी मित्रो किसी नैतिकता के आवरण में अपने को छिपाकर आदर्श बनने की कोशिश नहीं करती, अपितु नारी के पुराने सभी बिम्बों को चुनौती देती है। "वह हाड–मांस की एक ऐसी नारी है जो धर्म (पातिव्रत्य) और संस्कृति के नाम पर दबने वाली या कुंठाओं का शिकार बनने वाली नहीं है। वरन् अपनी आश्यकताओं को (शरीर की) खुल कर स्वीकारने और पूरा करने वाली है।"[७] मित्रो में मुक्ति चेतना की यह प्रवृति उसके आदर्शवादी रूप के प्रति मोहभंग के परिणाम स्वरूप उपस्थित है।

-: नारी मन की प्रौढ़ अनुभूतियों का चित्रण और नारी अस्मिता :-

'अपने को स्वतंत्रता के पक्ष में रखती हुई सोबती का कथन है– "अगर हमने स्वंय अर्जित की हुई व्यक्तिगत आज़ादी को जिआ नहीं तो कुछ न भरी पशोवेश और कुंठाओं की मार से हम आजीवन भद्रलोक स्पेशल भंगिमा ही ओढ़े रहेंगे।"[८] स्वाभिमान का यह स्वर कृष्णा जी की हर नारी पात्रों यहाँ तक कि वृद्धा नारी पात्रों में भी मौजूद है। 'सिक्का बदल गया' की साहनी का कथन है– "मेरे घर में मुझे देर ! आँसुओं की भँवर में न जाने कहाँ से विद्रोह उमड़ पड़ा। मैं पुरखों के इस बड़े घर की रानी और मेरे अन्न पर पले हुए..... नहीं, यह सब कुछ नहीं। ठीक है– देर हो रही है। देर हो रही है। शाहनी के कानों में जैसे यही गूँज रहा है– देर हो रही है– पर नहीं, शाहनी रो–रोकर

६. कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा सं० १९९४, आवरण पृ०
७. के० एम० मालती – साठोत्तर हिन्दी कहानी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं० १९९१ पृ० ४२
८. कृष्णा सोबती – सोबती एक सोहबत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं० १९८९, पृ० ४०१

नहीं, शान से निकलेगी इस पुरखों के घर से, मान से लाँघेगी यह देहरी, जिस पर एक दिन वह रानी बनकर आ खड़ी हुई थी।"[६]

अपने स्वाभिमान को इस कदर लिए सोबती की यह नारी अपनी व्यक्तित्व की पूर्णता में जीती है। नारी होना और न सिर्फ नारी होना बल्कि वृद्धा नारी होने पर भी इतना आत्म सम्मान दिखाकर कृष्णा जी यहाँ उसकी अनुभूतियों को नारी अस्मिता से जोड़ देती है। 'ऐ लड़की' की बीमार वृद्धा का उद्घोष वाक्य 'मैं मैं हूँ' में नारी अस्मिता का स्वर विराजमान है। ऐसा लगता है कि वृद्धा के आत्म संलाप में स्वयं कृष्णा जी ही मौजूद है और अपना अभिप्रेत व्यक्त करने के लिए ही उन्होंने प्रस्तुत कहानी की रचना की है। कहानी पूरी तरह पाश्चात्य आधार पर लिखी हुई है जिसमें दो पीढ़ियों के अन्तराल के साथ–साथ उनमें निहित समान बिंदुओं को भी बहुत ही सहज ढंग से चित्रित किया गया है। दो भिन्न पीढ़ियों में बजाय टकराव दिखाने के सोबती जी यहाँ दोनों के विचारों में समानता दिखाती हैं। अम्मा जो कुछ ही पलों का मेहमान है अपनी जीवन भर की संचित अनुभव निधि का कोष बेटी को सौंप रही है जिसमें स्त्री का अपना निजी जीवन और सामाजिक व्यक्तित्व निरुपित हुआ है। स्त्री के व्यक्ति स्वातंत्र्य के विश्लेषण में यहाँ नारी की अस्मिता को बिल्कुल आत्मनिर्भरता में देखा गया है। यहाँ कृष्णा जी नारी मन की प्रौढ़ अनुभूतियों को काफ़ी तार्किक और अर्थपूर्ण बनाकर नारी अस्मिता के प्रति सचेत दिखाई देती है। वृद्धा अम्मा का लड़की को शादी के लिए बजाय अपने या संगे–सम्बन्धियों लड़की को स्वयं लड़का देखने के लिए प्रेरित करना, शादी के बाद किसी के हाथ का झुन–झुना न बन जाने का संदेश देना नारी चेतना की वह कड़ी है जिसे आज की पीढ़ी सबसे ज़्यादा 'आईडेंटिफाई' कर सकी है। नारी

६. कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं० १९८०, पृ० १२७

मन की इन प्रौढ़ अनुभूतियों में आज की नारी के आत्मबोध का पैनापन बखूबी सामने आया है और इन्ही अनुभूतियों के चित्रण के फलस्वरुप ही कृष्णा जी स्त्री की अस्मिता और 'सत्व' की लड़ाई को अपेक्षाकृत गंभीर रूप दे सकी है।

-: स्त्री-पुरुष का समवेत संसार - जीवन में पुरुष की अनिवार्यता :-

तस्लीमा नसरीन, सीमोन द बोउवा तथा उनसे प्रभावित आज की तमाम हिन्दी महिलालेखकों की तरह कृष्णा जी शेखी और ज़िद में केवल पुरुष के विरोध के लिए किसी प्रकार की कटुता के प्रदर्शन में रूचि नहीं लेती और न ही यह मानती हैं कि पुरुष स्त्री का शोषण करता है। कृष्णा जी की मान्यता है कि स्त्री शोषित स्वयं होती है अपने को 'रसर्ट' न कर पाने के कारण। शायद यही कारण है कि उन्होने अपने किसी भी लेखन में पुरुष को अपराधी या ग़लत बताकर औरत की स्थिति का वर्णन नहीं किया है और न ही उसके व्यक्तित्व और नियति के लिए पुरुष को जिम्मेदार माना है। इस संदर्भ में अर्चना वर्मा का कथन है– "सोबती का संसार स्त्रियों और पुरुषों का समवेत संसार है, एक दूसरे के संदर्भ या मुकाबले में खड़ा संसार नहीं।"[१०] निसंदेह सोबती की नारियों में नारी चेतना कूट–कूट कर भरी हुई है, लेकिन इनकी नारियाँ चाहे 'बादलों के घेरे' की नारियाँ हो या 'डार से बिछुड़ी' की, 'मित्रो मरजानी' की मित्रो हो या फिर 'ऐ लड़की' की वृद्धा अम्मा सभी पुरुष और नारी के समन्वित रूप को ले कर चलती है। नारी के होने का अहसास कराती हुई कृष्णा जी कहीं से भी पुरुष के प्रति अपमानित दृष्टि नहीं रखती। विद्रोह की प्रवृति उनकी नारियों में तो है, लेकिन कहीं से विद्रोह का दंभ भरती नज़र नहीं आती। सामाजिक नैतिकता और मान्यताओं को नकारती हुई कृष्णा जी उनके प्रति आलोचना का भार भी नहीं रखती। यही कारण है कि उनकी लगभग सभी कहानियों में स्त्री–पुरुष का समन्वित रूप दिखाई देता है।

१०. अर्चना वर्मा – साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १ फरवरी, १९८१, पृ० –६

पुरुष एवं नारी की भावनाओं को समानता में देखने वाली सोबती की एक बहुचर्चित कहानी है 'ऐ लड़की'। जिन्दगी में पुरुष की आवश्यकता को इस कहानी में बहुत ही सहजता से लिया गया है जैसे किसी इंसान को भूख लगे और वह खाना खा लें। अम्मा का यह कहना कि "अपने लिए लड़का ढूँढ़ लिया है क्या? यह काम भी तुम्हें खुद ही करना होगा"[११] कृष्णा जी के उस व्यक्तित्व का द्योतक है, जहाँ स्त्री और पुरुष में समानता को दिखाता है। अपने इस कथन के माध्यम से सोबती जीवन में पुरुष की अनिवार्यता को भी स्पष्ट कर देती है। जीवन रूपी नाव को अकेले चला लेने में सोबती विश्वास नहीं रखती हैं। 'ऐ लड़की' की अम्मा को यह दुःख है कि उनकी बेटी जिसको उन्होंने बेटे के बराबर ही माना ताउम्र अकेले रहना चाहती है। वह उससे पूछती है– "लड़की, अपनी इस इकहरी यात्रा में क्या प्रमाणित करोगी? कुछ भी नहीं। संग–संग जीने में कुछ रह जाता है, कुछ बह जाता है। अकेले में कुछ रहता है, न कुछ बहता है। यह संसार ही सत्य है। इसके बाहर और परे कहीं कुछ नहीं है..... लड़की यही लोक है जहाँ मनुष्य हाथ से काम कर सँवार सकता है। ऊपर घर–घर चूल्हें नहीं जलते, न ही काया में अग्नि का स्फुरण होता है। किसने देखा आँख से बैकुंठ धाम। तीर्थ यात्रा यहीं है यहीं। कहीं और नहीं।"[१२]

जीवन में पुरुष की आवश्यकता को केवल 'ऐ लड़की' की अम्मा में ही नहीं, अपितु 'बादलों के घेरे' की लगभग सभी नारी पात्रों में देख सकते हैं। 'बादलों के घेरे' के प्रायः सभी नारी पात्रों में पुरुष के उस प्यार की तलाश है जो उन्हें 'चीज' से ऊपर की नारी बनाने में मदद करता है। इसलिए 'बहने' कहानी की मझली पुरुष की आवश्यकता को महसूस करती है। वहीं 'दादी अम्मा' की नारियाँ अपनी संपूर्णता सिर्फ पति रूपी

११. कृष्णा सोबती – ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं० १९९३, पृ० ७१
१२. कृष्णा सोबती – ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं० १९९३, पृ० १०९, ११६

पुरुष में पाती हैं। 'जिगरा की बात ' की अमरों और 'सिक्का बदल गया' की साहनी की भी लगभग यही स्थिति है। यद्यपि 'नामपट्टिका' में पुरुष 'शास्त्र' के विरूद्ध स्त्री 'शस्त्र' की लड़ाई को स्पष्ट करते हुए कृष्णा जी यह घोषित करती हैं – "अपना कुल–धर्म अधिकारों की लड़ाई, आपकी प्रभा सुलह सफाई"[१३] .... लेकिन, इस घोषणा के बावजूद भी कृष्णा जी पुरुष के संग–साथ को ज़रूरी मानती हैं– चाहे विवाह के रूप में हो या 'नामपट्टिका' के कृत्या व शिव की तरह मैत्री के रूप में। वैसे भी एक संस्था के रूप में कृष्णा जी के मन में तस्लीमा नसरीन की तरह कहीं कोई कटुता नहीं है, क्योंकि उसके विकल्पहीन अस्वीकार को वे अव्यवहारिक मानती हैं। लेकिन, विवाह सिर्फ स्त्री का सर्मपण और समझौता बन जाय – यह कृष्णा जी को मान्य नहीं है। 'ऐ लड़की' में बीमार वृद्धा का सूसन को 'शादी के बाद किसी के हाथ का झुन–झुना' न बनने का सलाह देना इसी बात का संकेत है। समग्रतः कृष्णा जी स्त्री–पुरुष के समवेत संसार को लेकर चलती हैं, एक–दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी रूप को लेकर नहीं। यह इसी समवेत संसार की ही विशेषता है कि स्वभाव से खिलंदरी और अपनी दैहिक आवेगों के प्रति मुखर मित्रो भी अंत में अपनी माँ की काली छाया से अपने और अपने पति को बचाती हुई अन्ततः पति के पास लौट आती है।

-: भारतीय परिवेश और स्त्री जीवन :-

आज की कहानी में नारी संदर्भो को देखा जाय तो यह बात स्पष्ट उभर कर आती है कि आज परंपरा और आधुनिकता, पाश्चात्य और भारतीयता के द्वन्द्व में हमारी अधिकांश लेखिकाओं ने पाश्चात्य संस्कृति में अपनी नायिकाओं को ढ़ाला है। लेकिन कृष्णा जी में तमाम आधुनिक सभ्यता के चकाचौंध के बावजूद भारतीय परिवेश के प्रति लगाव वैसा ही है। कृष्णा जी की यही वह नारी दृष्टि है, जिसके कारण वे अपनी

१३. कृष्णा सोबती – नामपट्टिका, पृ०

समकालीन लेखिकाओं से काफी अलग सी खड़ी दिखाई देती है। उनके नारी पात्र पाश्चात्य प्रभाव से ओत–प्रोत होते हुए भी भारतीय परिवेश को पूर्ण रूप से नकार नहीं पाई है। पश्चिमी गुणों से लैस उनके नारी पात्र जिन्दगी को बहुत ही सहजता से जीती दिखाई देती हैं। एक गृहस्थी बसाने की चाह और उसे भी पूर्ण भारतीय पारिवारिक ढंग से रखने की इच्छा उनकी हर नायिकाओं में मिलती है। 'बादलों के घेरे' की नायिकाओं में ही नहीं पाशो से लेकर मित्रो तक सभी इसी चाह में बँधी हैं। पाशो एक सुखी गृहस्थी का स्वप्न देखती है– और उसी की प्रतीक्षा में दर–दर भटकती है, रति जो एक 'फ्लर्ट' किस्म की औरत समझी जाती रही है भी रीमा और केशी की सुखद गृहस्थी को हसरत से देखती है और अपने लिए भी एक ऐसी ही गृहस्थी की कामना करती है। निर्भीक, दबंग, बेवाक और बीहड़ मित्रो भी अन्ततः लौट कर अपने घर पति के पास आती है। शिवा, शीला, श्यामा, मीनल सभी में यह चाह तीव्र है। घर परिवार की कामना ये सभी स्त्रियाँ करती हैं। स्वतंत्र विचारों वाली प्रगतिशील नारियाँ होने के बाद भी ये सभी नारियाँ भारतीय परिवेश को स्वीकार करती हैं। 'ऐ लड़की' की वृद्धा माँ जिसका रहन–सहन, खान–पान सभी कुछ पश्चिमी माहौल से लिया गया है में भी वैचारिक धरातल पर पूर्ण रूप से भारतीयता के दर्शन होते हैं। वृद्धा अम्मा का स्वतंत्र व्यक्तित्व जी रही लड़की को गृहस्थ बंधन की महत्ता बताना, मातृत्व की महत्ता से उसे परिचित कराना भारतीय परिवेश का ही स्वीकार है। प्रजनन के महत्व को बयान करती अम्मू कहती है– "इस तरह माँ करती है, मृत्यु को पराजित। जिसके हाथ में फल का पुण्य नहीं लड़की वही नाशवान है।"[१४]

कृष्णा जी की यह एक ऐसी दृष्टि है जिसे सहज ही आलोचकों को ग्राह्य नहीं होता है। यही कारण है कि कुछ लोगों ने कृष्णा जी की इस दृष्टि को आधुनिकता का

१४. कृष्णा सोबती – ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम सं० १९९३, पृ० ६१

विरोधी करार दिया है। उन्हें इस बात में आधुनिक दृष्टि से विरोध दिखाई दिया है कि– स्वतंत्र व्यक्तित्व जी रही स्त्री (लड़की) को गृहस्थ बंधन की महत्ता बताई जाती है, उसे 'चलवंत सैनिक से शासन करते' पुरुष की सत्ता के अधीन रहने की सीख दी जाती है। कुछ ऐसा ही आरोप मित्रो को लेकर कृष्णा जी पर लगाया जाता है कि 'सारे विद्रोह और तड़क–भड़क के बाद भी मित्रो पारंपरिक मान्यताओं से ग्रस्त हो वापिस लौटती है। मन बदलाव वाला आदर्श उस पर हावी हो जाता है। कृष्णा जी के कहानीकार अनुभव कोष से परिचित व्यक्ति इस तथ्य को भलि–भाँति जानता है कि 'मन बदलाव वाला आदर्श' कृष्णा जी पर कभी हावी नहीं हुआ है। कृष्णा जी भारतीय समाज की यथार्थता को बखूबी जानती है। अतः यदि मित्रो कहानी के अंत में रमणी से पत्नी बन जाती है और स्वतंत्र व्यक्तित्व जी रही लड़की को गृहस्थ बंधन की महत्ता बताई जाती है तो वह कृष्णा जी का भारतीय परिवेश के प्रति, उसकी यथार्थता से लगाव के कारण ही है। इस बात में उन्हें ही आधुनिक दृष्टि का विरोध नजर आयेगा जो पाश्चात्य दृष्टिकोण से आधुनिकता को जाँचते–परखते हैं।

-: यौन प्रसंगों का साहसिक चित्रण :-

कृष्णा जी ने स्त्री की यौनेच्छा की व्याख्या साफ–साफ शब्दों में कर नारी और 'सेक्स' के विषय में चली आती हिन्दी साहित्यकारों की संस्कारजन्य पुरानी दृष्टि को चुनौती दी है। ऐसा नहीं है कि कृष्णा जी से पहले 'सेक्स' पर किसी ने न लिखा हो। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस विषय पर अनेकों कहानियाँ लिखी गई। मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों और 'सेक्स फ्रस्टेशन' को लेकर अनेकों उपन्यास लिखे गए। लेकिन अब तक इस क्षेत्र में केवल पुरुषों का एकाधिकार था। किसी महिला लेखिका द्वारा ऐसे पात्रों की सर्जना नहीं हुई थी जो शादी–शुदा होने के बाद भी अन्य के साथ उन्मुक्त यौन–सम्बंध एवं विचरण की कामना रखती हो और यह कामना सिर्फ मन में ही न रखकर,

प्रत्यक्ष रूप से सभी के सामने कहती हो। ऐसे वर्जित प्रसंगों को रखकर कृष्णा जी पुरुष सत्तात्मक समाज को चुनौती तो देती ही है, स्वंय भी भारतीय समाज में एक प्रकार का विद्रोह का काम करती हैं। कृष्णा जी की यह एक ऐसी नारी दृष्टि है जिसे प्रायः सभी परवर्त्ती महिला कथाकारों ने स्त्री–स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए औज़ार के रूप में ग्रहण किया है।

वास्तव में हिन्दी कथा–साहित्य में मित्रो जैसी औरत का प्रवेश पहली बार हुआ है जो औरत होने की मजबूरी के ख़िलाफ़ विद्रोह करती है, सदियों से नारी पर लादे गए सारे संस्कार सम्बंधों के मुखौड़े को उतार फेंकती है और बिना किसी ढ़ोंग और लिहाज के अपनी देह के वैभव और उसकी जैविक ज़रूरतों को अपनी जुबान से कहती है जिससे प्रत्येक मानव कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में ग्रसित है। भरे–पूरे परिवार की बिचली बहू, सरदारी लाल की पत्नी मित्रो की समस्या उसके काम अमुक्ति की है, यौवन की अमिट प्यास की है– जिसका 'मर्दजना' जानता ही नहीं कि वह किस गुरू से काबू में आती है। मित्रो का बचपन जहाँ बीता है, वहाँ रहकर उसने जाना है कि शरीर की पवित्रता उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितना महत्वपूर्ण है अपनी वासना की तृप्ति। बचपन से अपनी माँ को वह जिस रूप में देखती आई है, कस्बे की लोगों की जिन निगाहों को उसने पढ़ा है, उन सबने मिलकर उसके मन में तीव्र वासना की सृष्टि की है। माँ के घर में वह अतृप्त रही है और विवाह के बाद भी यह अतृप्ति बनी रहती है। उसका पति सरदारी लाल यह जानता नहीं कि उस जैसी 'दरियाई नार' किस गुरू से काबू में आती है। अपने मायके के परिवेश और अपनी शारीरिक अतृप्ति के सम्बंध में वह अपनी जिठानी से कहती है– "सात नदियों की तारू, तने–सी काली मेरी माँ, और मैं गोरी चिट्टी उसकी कोख पड़ी। कहती है इलाके की बड़भागी तहसीलदार की मुँहादरा है मित्रो! अब तुम्हीं बताओ, जिठानी तुम –जैसा सत–बल कहाँ से

पाऊँ–लाऊँ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता।.... बहुत हुआ हफ़्ते–पखवारे.....और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास कि मछली सी तड़पती हूँ।''[१५]

यहाँ मित्रो अपनी शारीरिक अतृप्ति को पूर्ण रूप से अपना मानकर एक प्रकार से भारतीय समाज में हलचल पैदा कर देती है। यहीं पर मित्रो को सामाजिक कठघरे में खड़ा कर दिया जाता है और कृष्णा जी पर यह आरोप लगाया जाता है कि इस पात्र का सृजन उन्होंने केवल यौन–प्रसंगों के प्रदर्शन के लिए किया है, अपनी साहसिकता के प्रदर्शन के लिए किया है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। कृष्णा जी ने यौन–प्रसंगों का चित्रण जानबूझ कर या अपनी साहसिकता के प्रदर्शन के लिए नहीं किया है। इस संदर्भ में उन्हीं का कथन है– ''मित्रो व्यक्ति की जिस छटपटाहट की प्रतीक है, वह यौन उफ़ान ही नहीं, व्यक्ति की अस्मिता का अक्स है, जिसे नारी की पारिवारिक महिमा में भुला दिया जाता है। हाथ की मेहनत और देह से सुखदान, उतना सा ही है उसका यशोगान।''[१६]

वास्तव में मित्रो एक पात्र ही नहीं, सामाजिक सत्य भी है। मित्रो की हरकतें समाज या परिवार से कटी हुई नहीं है। समाज के लिए मित्रो एक ज्वलंत समस्या लेकर आती है, जिससे हम सभी परिचित हैं। एक स्त्री जो सुन्दर है, अंग–अंग से भरी–पूरी है और यौवनावस्था में है उसकी यौन तृप्ति की माँग करना सामाजिक सच्चाई है और मित्रो इस सच्चाई का प्रतिरूप है। लेकिन, सबसे बड़ी बात यह है कि वह इस क्षेत्र में ईमानदार है। इस सफेद पोश समाज में नकाब ओढ़कर नहीं आती है, इसलिए उसका विद्रोह सभी को चौंकाता है। मित्रो ही नहीं 'गुलाब जल गंडेरिया' की धन्नो, 'कुछ नहीं कोई नहीं' की शिवा तथा 'दो राहें दोबा' की कुंतल भी हैं। ये सभी नारियाँ भूख के स्तर

१५. कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, तीसरा सं० १९९४ पृ० १९

१६. समकालीन भारतीय साहित्य (संपादक–गिरधर राठी) जनवरी–मार्च १९९१, पृ० १८४

पर इसे पहचान कर सम्बंधों को इसके आधार पर गढ़ लेती हैं 'सेक्स' को पवित्र बंधन से जोड़कर असंतुष्टि की आग में नहीं झुलसाती हैं। 'कुछ नहीं कोई नहीं' की शिवा अपनी शारीरिक भूख और छटपटाहट को दिखाती हुई कहती है– "रूपबाई पिछले महीनों का संयम पल भर के लिए कड़ा होकर रूका और रूकते ही पानी हो गया। आनन्द मेरी और घिरे, मैं उनकी ओर।"[१७]

इस तरह हम देखते हैं कि यौन प्रसंगों के चित्रण में कृष्णा जी ने अपनी साहसिकता का परिचय दिया है, लेकिन यह साहसिकता महज प्रदर्शन के लिए न होकर समाज की सच्चाई को व्यक्त करने में है। कृष्णा जी की संपूर्ण कथा यात्रा से गुजरते हुए हम पाते हैं कि 'स्त्री–चेतना' के बहुआयामी रूप इनके यहाँ मौजूद हैं। कृष्णा जी कैसी भी धर्म शिक्षा के बजाय जीवन की सच्चाई को वरीयता देने वाली लेखिका हैं। आप अपने पात्रों को पवित्र नहीं चरित्र बनाती हैं। चरित्र भी ऐसे कि वह 'रचनात्मक उपज न लगकर अपने जल से निकाली गई ताजी मछलियाँ' लगती हैं। कृष्णा जी की हर रचना उनकी अपनी ही फ़ितरत का अंदाज़ है। वे निर्विवाद रूप से हिन्दी की सबसे चर्चित लेखिका हैं– विपुलता की नहीं स्तर की लेखिका हैं।

१७. कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं० १९८०, पृ० ८२

दूसरा अध्याय (ख)

प्रतिभा राय की कहानियों मे स्त्री-चेतना के विविध आयाम

-: स्त्री आदर्श मोहभंग एवं मुक्ति की चेतना :-

भारतीय समाज व्यवस्था में सीता, अनुसूया, तारा, मंदोदरी आदि को सती नारी की आख्या देते हुए उन्हें आदर्श नारी कहकर महिमा मंहित किया गया है। लेकिन प्रतिभा जी के नारी पात्रों के लिए ये आदर्शपात्र अनुकरणीय प्रतिमान नहीं बन पाए हैं। उनकी नारियाँ आधुनिक चेतना सम्पन्न गुणों से दीक्षित हैं, अतः अपनी अस्मिता के प्रति, अपने अधिकार के प्रति जागरूक हैं। वे द्रौपदी जैसी स्वतंत्र चेता नारी को अपना आदर्श मानती हैं। इस संदर्भ में प्रतिभा जी का स्वंय का कथन है – "द्रौपदी के आदर्श से इस युग की नारी दीक्षिता हैं। अन्याय व अत्याचार का प्रतिवाद करने के लिए उसने उच्च शिक्षा और आधुनिकता का सहारा लिया है। इसलिए वह नीरवता में आत्माहुति नहीं देगी। वह प्रतिशोध लेगी– लेना ही उचित है।"[१]

वास्तव में जब तक नारी पारंपरिक आदर्शों में जकड़ी रहेगी, इस मनुवादी जकड़बंदी से वह मुक्त न हो सकेगी। वह शक्ति, सती, देवी तो बनी रहेगी, लेकिन सही अर्थों में मानवी नहीं बन पाएगी। क्योंकि इस तथाकथित आदर्श के आड़ में उसका शोषण होता रहेगा और वह इसका प्रतिवाद भी न कर सकेगी। प्रतिभा जी की नायिकाएँ इस तथ्य से भलि–भाँति वाकिफ़ हैं, इसलिए नारी के पुराने सभी बिम्बों को वे चुनौती देती हैं। स्वयं को मुक्त रखने की आकांक्षा रेखने वाली प्रतिभा जी की नायिकाओं में भी यह आकांक्षा तीव्रतर दिखाई देती है। समाज के हर क्षेत्र में बराबरी की सहभागिता और अपनी 'आईडेंटिटी' अर्जित करने के लिए वे तत्पर हैं। समाज में व्यक्ति सिर्फ पुरुष ही हैं, ऐसा उन्हें मान्य नहीं है। तभी तो 'उत्तरदायी' कहानी की नायिका सुमति समाज, शास्त्र और पंडो–पुरोहितों को चुनौती देती हुई अपने पिता के शव पर मुखाग्नि देती है और इसे वह अपना अधिकार समझती है। प्रतिभा जी आत्मदया से प्रेरित औरत के

१. प्रतिभा राय – चन्द्र भागा व चन्द्रकला, आद्य प्रकाशनी, कटक, तीसरा सं० १९९२, पृ० २६

उस इतिहास को सतही मानती हैं जिसमें वह मात्र शोषिता है। 'मनुष्य स्वर' की नायिका सुबन और पाँच नारी को बता देना चाहती है कि –"नारी का केवल शरीर ही नहीं जो अपने मर्द को सुख देगा और बदले में उससे मार खायेगा। उसका अपना एक मन भी है, इच्छानुसार जीने का हक भी है।"[२] अपने इसी हक के लिए सदियों से स्थापित भारतीय नारी के जीवन मूल्यों को जिन्हें हम तथाकथित शाश्वत मूल्यों के नाम से पुकारते आए हैं, वह जबरदस्त चुनौती देती अन्य पुरुष से विवाह कर लेती है। अपनी इस कहानी के माध्यम से प्रतिभा जी स्त्री की स्वतंत्र सत्ता को निरूपित करती हैं। प्रतिभा जी की एक अन्य कहानी 'ट्रलीवाली' की नायिका पुरुष वचस्व को खंडित करने वाली चेतनापूर्ण नारी है जो सही अर्थो में नारी अस्मिता की लड़ाई लड़ रही है। इसे किसी प्रकार के आदर्श का मोह नहीं है, समाज का भय नहीं है और न ही ईश्वर का डर है। तभी तो सदियों से स्थापित भारतीय समाज के सांस्थानिक बंधन को भी वह चुनौती देती है। वास्तव में ट्रलीवाली वर्जनाओं से मुक्त चरित्र है जो यौन–तृप्ति को विवाह बंधन से न जोड़कर उसे देह की स्वाभाविक आवश्यकता से जोड़ देती है। अपनी शारीरिक तृप्ति को पूर्णतया अपना मानकर ट्रलीवाली यहाँ भारतीय समाज में एक हल–चल पैदा कर देती है। सुमति हो, सुबन हो या फिर ट्रलीवाली सभी में मुक्ति की यह चेतना उनके आदर्शवादी रूप के प्रति मोहभंग के परिणाम स्वरूप उपस्थित हुआ है।

प्रतिभा जी की कहानियों में स्त्री मुक्ति चेतना का यह एक रूप है। इसका एक और भी रूप है जिसे 'फेरार' और 'उल्लग्न' कहानी में देखा जा सकता है। इन कहानियों की नायिकाएँ नारी के पारंपरिक छवि से पूर्णतः मुक्त हों अन्याय का डटकर मुकाबला करती हैं। अपने न्याय व अधिकार के लिए वे किसी के सामने झोली फैलाकर दया की भीख नहीं माँगती, अपितु अपने तरह से न्याय पा लेती है। प्रतिभा

२. प्रतिभा राय – मनुष्य स्वर, आद्या प्रकाशनी, कटक, तीसरा सं० १९९३, पृ० १६

जी यहाँ नारी सम्बंधी सभी पुराने मानदंडों को चुनौती देते हुए अपनी नायिकाओं को बिल्कुल नए रूप में प्रस्तुत करती हैं। सृष्टि के आरंम्भ से लेकर अब तक पाशविक अत्याचार पर केवल पुरुषों का एकाधिकार रहा है, लेकिन अपनी 'फेरार' कहानी में प्रतिभा जी ने नारी द्वारा पाशविक अत्याचार, पुरुष खलनायक पर नायिकाओं का गणघर्षण (बलात्कार) दिखा कर भारतीय समाज के सामने स्त्री–पुरुष समानता का एक प्रश्न भरा चित्र खींचा है। ठीक उसी तरह 'उल्लग्न' कहानी में नायिका के हाथों चाकू थमाकर प्रतिभा जी ने बदमाशों से उसे निजात दिलाया है। इस संदर्भ में प्रतिभा जी का विचार है – "नारी का उल्लग्न न होने से पुरुष के भीतर की पशुता का नष्ट नहीं होता। इसलिए नारी को कात्यायनी बनना पड़ेगा। उसे शरीर सम्बंधी सभी कुंठा और जड़ता को त्यागना होगा। बाहर निकले तो आत्म रक्षा के लिए प्रस्तुत होकर निकलना होगा।"[३] पुरुष सत्तात्मक भारतीय समाज में विषमता की यातना झेल रहे समस्त स्त्री वर्ग के लिए प्रतिभा जी की ये नायिकाएँ ('फेरार' और 'उल्लग्न' कहानी की नायिकाएँ) कहाँ तक अनुकरणीय हैं यह निश्चय ही विचारणीय सवाल है, लेकिन इन स्वतंत्र चेता नारियों के माध्यम से नारी शोषण के विरूद्ध विद्रोह का जो स्वर प्रतिभा जी ने इन कहानियों में बुलंद किया है इसमें इन नारियों की 'वैयक्तिक मुक्ति' मौजूद है और यह मुक्ति उनके आदर्श के प्रति मोहभंग के परिणाम स्वरूप उपस्थित हुआ है।

-: नारी मन की प्रौढ़ अनुभूतियों का चित्रण और अस्मिता :-

आज की नारी प्राचीन व्यवस्था से संघर्ष करती हुई पहले से कहीं ज्यादा स्वच्छन्द और प्रभावशाली व्यक्तित्व को लेकर प्रस्तुत हुई है। अपने अस्तित्व को बनाने की प्रबल इच्छा आज प्रत्येक नारी पात्रों में यहाँ तक कि वृद्धा नारी पात्रों में भी तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है– वह नारी चाहे शहर की हो, गाँव की हो या कस्बाई। जहाँ तक प्रतिभा

३. प्रतिभा राय – पृथक ईश्वर, नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक, दूसरा सं० – १९९४, पृ० १९८

जी के नारी पात्रों का सवाल है, तो उनमें भी यह इच्छा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। प्रतिभा जी के नारी पात्रों में स्वाभिमान कूट–कूट कर भरा हुआ है। स्वाभिमान का यह स्वर उनके प्रौढ़ नारी पात्रों में और भी अधिक मुखरित हुआ है। उड़िया कथा साहित्य में नारी मन की प्रौढ़ अनुभूतियों को प्रतिभा जी ही वाणी दी हो, ऐसा नहीं है– वीणापाणी महांति, मानसी दास, यशोधरा मिश्र आदि महिला लेखिकाओं में भी यह प्रवृति मिल जाती है। लेकिन इन अनुभूतियों को स्वर देकर उसे नारी की अस्मिता से जोड़ देने का काम संभवतः प्रतिभा जी ही कर सकी हैं। दिन के उजाले में संहिताएँ वमन करने वाले शरीफ लोगों (?) को 'पाप' कहानी की वृद्धा सरमी पूरे मोहल्ले के सामने आड़े हाथों लेती हुई जो उद्‌घोष वाक्य सुनाती है उसमें नारी मात्र का व्यक्ति स्वातंत्र्य निहित है – "हाँ, हाँ, रथ घर की बहू उन्मादिनी रोग से पीड़ित है। बेचारी सती होने की लालसा नहीं छोड़ती। दूसरे मर्दो को नहीं चाहती। इसलिए उसकी अन्दर की अग्नि ने उसे उन्मादिनी बनाया है। यदि और पाँच औरतों की तरह वह भी अपनी आग को बुझाने के लिए कामुक पुरुषों के लिए द्वार उन्मुक्त कर देती, तो वह भी आज सती सावित्री बनकर बैठी होती। उतना नहीं कर पाई इसलिए यह समाज उसे असती कहता है। अपने स्वामी पुत्र की ह्वाही देकर कोई बताएँ कि उसके मन में पाप सवार नहीं हुआ है। यह समाज औरतों को किसी भी पुरुषों के हाथ बाँध देता है। पुरुषों के पसन्द–ना–पसन्द से विवाह होता है। क्या औरतों के लिए पसन्द–ना–पसन्द कुछ नहीं है? क्या उसका मन नहीं है, देह नहीं है? केवल एक पेट है जो खायेगा और गर्भ धारण करेगा? भोजन से उदर की पूर्ति तो हो सकती है मन की नहीं, शरीर की नहीं। इसलिए पाप करने के लिए वह बाध्य है।"[४]

---

४. प्रतिभा राय – मोक्ष, आद्य प्रकाशनी, कटक प्रथम सं० १९९६, पृ० २०४

स्वाभिमान को इस कदर लिए हुए प्रतिभा जी की यह वृद्धा नारी जहाँ अपनी अनुभूतियों के माध्यम से समाज की सच्चाई को पर्दाफाश करती है, वहीं नारी मात्र की अस्मिता उसकी स्वतंत्र सत्ता की ओर भी ध्यान दिलाती है। 'पाप' कहानी की वृद्धा सरमी की तरह ही 'बीजमंत्र' की वृद्धा रानी भी अपनी अंतिम इच्छा में पुरुष सत्ता को चुनौती देती हुई नारी को व्यक्ति मानने की माँग करती है – "इस गाँव के मर्दो से कहो औरतों को गुड़िया न समझे। रक्त माँस का शरीर लिए, पाँव न फिसलेगा वह कौन कह सकता है। रास्ता तो मर्दो ने बनाया है ..... खुद बारह जगह मुँह मारेंगे और बहू–बेटियों को सती बनाकर रखेंगे.....।"[५]

प्रतिभा जी की कहानियों में प्रायः ऐसा देखने को मिलता है कि वर्तमान युवा नारी को उसके अधिकार के प्रति सचेत कोई वृद्धा नारी कराती है। एक ऐसी ही कहानी है 'वृत्त'। इसमें वृद्धा निर्मला की बहू को जब उसका बेटा तलाक देने की बात करता है तो निर्मला अपनी बहू को उसके अधिकार के प्रति सचेत कराती हुई उसे दूसरी शादी की सलाह देती है और वह उसे न्याय समझती है। वृद्धा का कथन है – "इस शादी में महाभारत अशुद्ध नहीं हो जायेगा। धर्म–अधर्म पाप–पुण्य की परिभाषा में बदलाव आया है।"[६] वृद्धा निर्मला के इस सलाह में नारी मात्र का आत्म सम्मान, उसका स्वाभिमान बोल रहा है। प्रतिभा जी यहाँ नारी मन की इन प्रौढ़ अनुभूतियों के चित्रण में वर्तमान नारी अस्मिता की लड़ाई को एक नयी दिशा देने की कोशिश की है।

-: स्त्री-पुरुष का समवेत संसार-जीवन में पुरुष की अनिवार्यता :-

आज की कहानी में नारी संदर्भो को देखा जाय तो यह बात स्पष्ट नजर आती है कि आज नारी की सभी विसंगतियों, विद्रूपताओं आदि के लिए जिम्मेदार सामाजिक,

५. प्रतिभा राय – मोक्ष, आद्या प्रकाशनी, कटक प्रथम सं० १९९६, पृ० २७२
६. प्रतिभा राय – अनाबना, आद्या प्रकाशनी, कटक, तीसरा सं० १९९३, पृ० १८

राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक कारण है। यथार्थ के धरातल पर आज की नारी बाहरी चमक–दमक, शारीरिक पवित्रता जैसी मान्यताओं को दरकिनार करती हुई, आजीविका के साधन जुटाती हुई, संकुचित मानसिकता को बाहर निकाल स्वयं को पुरुषों के समान ही प्रस्तुत करने लगी है। स्वातंत्र्योत्तर नारी के इस रूप को भी डॉ० प्रतिभा राय ने अपनी तमाम कहानियों में स्थान दिया है। प्रतिभा जी की नारियाँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। नारी के मन में पुरुष के प्रति उठने वाली शंकाओं, वितृष्णाओं और उससे अलग होकर बराबरी का अधिकार जताने की प्रतिभा जी की पहली कहानी संग्रह 'सामान्य कथन' (१९७८) से लेकर उनकी नव्यतम कहानी संग्रह मोक्ष (१९९६) में यह प्रवृत्ति विद्यमान है। समाज में अपने को व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने के लिए उनकी नारियाँ संघर्षरत हैं और इसके लिए वे बराबरी का अधिकार भी जताती हैं। लेकिन बराबरी की इस लड़ाई में वे कहीं भी पुरुष के प्रति आक्रोश, खीज या विद्रोह प्रकट नहीं करती । 'फेरार', 'उल्लग्न' जैसी एकाध कहानी को छोड़ दिया जाय तो उनकी प्रायः कहानियों में यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

प्रतिभा जी स्त्री–पुरुष के समवेत संसार पर जोर देती है। एक–दूसरे के मुकाबले में खड़ा संसार को नहीं। उनकी मान्यता है कि "नारी स्वतंत्रता का अर्थ पुरुष के साथ बजाय प्रतिस्पर्धा के उसके समन्वय के अर्थ में होना चाहिए। नारी प्रगति का अर्थ पुरुष से प्रतियोगिता नहीं है, बल्कि उसकी सहभागिता में है।"[७] अपने इस कथन में प्रतिभा जी कहीं न कहीं जीवन में पुरुष की अनिवार्यता को रेखांकित करती है। उनकी ट्रलीवाली जिनमें सांस्थानिक बंधनों को नकार देने का साहस है– भी जिन्दगी में पुरुष की अनिवार्यता को महसूस करती है– "अच्छा खाना खाने से ही अच्छे कपड़े पहनने से ही मनुष्य का मन पूरा नहीं होता। भगवान ने स्त्री–पुरुष का निर्माण क्यों किया है?

७. प्रतिभा राय – इतिवृत्तक, नालन्दा, विनोद बिहारी, दूसरा सं० १९९३ पृ० १०२

एक दूसरे को कुछ तो सुख देता होगा? माँ इतना मार खाकर भी, यातना झेल कर भी बप्पा का आदर करती थी, चाहती थी क्या बिना सुख के? माँ की उस दुःखभरी जिन्दगी में बप्पा कभी न कभी सुख देते अवश्य होंगे। इसलिए स्त्री–पुरुष को खोजती है और पुरुष स्त्री को। भोजन और कपड़े की तरह दोनों–दोनों के लिए आवश्यक है।"[८]

प्रतिभा जी यह मानती हैं कि स्त्री सामाजिक और सांस्थानिक बंधनों से मुक्त होकर भी जिन्दगी को जी सकती है लेकिन पुरुष का संगसाथ अंतिम दिनों तक उसके लिए आवश्यक है क्योंकि वह अकेलेपन को भरता है और अकेला प्रकृत बहाव के विरूद्ध है। अतः पुरुष के बिना नारी और नारी के बिना पुरुष का जिन्दगी बिताना असंभव है। नारी और पुरुष की भावनाओं को समानता में देखने वाली प्रतिभा जी की एक कहानी है– 'नर मंगल समिति।' उल्लेखनीय बात यह है कि प्रतिभा जी ने इस समिति का सभापति एक नारी को बनाया है जो विपन्न और असहाय पुरुषों को उसके वंचित अधिकार दिलाने के लिए कटिबद्ध है। कहानी की नायिका का कथन है – "समाज सेवा मेरा लक्ष्य है। जब मैं यह अनुभव करती थी कि नारी निर्यातिता है, विपन्न है, असहाय है और अपने अधिकार से वंचित है तो मैंने नारी के समक्ष में लड़ाई की। अब मैं यह अनुभव कर रही हूँ कि नारी की तरह पुरुष भी विपन्न है, असहाय है और अपने अधिकारों से वंचित है– नारी के हक की लड़ाई लड़ने के लिए – उन्हें न्याय दिलाने के लिए तो जगह–जगह नारी मंगल समिति बनाई गई है, परन्तु पुरुष अब भी इससे वंचित हैं।"[९]

वास्तव में आज के इस उन्नुन्नत समाज में नारी यदि चाहे तो किसी भी संभ्रान्त पुरुष के चरित्र पर कालिमा लगा सकती है – अपने को घर्षिता बताकर। दिन था जब

८. प्रतिभा राय – हरित पत्र, नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक, दूसरा सं० १९९२, पृ० १०६
९. प्रतिभा राय – पृथक ईश्वर, नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक, दूसरा सं० १९९४, पृ० ७३

वास्तविक घटना पर भी लज्जा, बदनामी और भविष्य की आशंका से आशंकित स्त्रियाँ अन्याय को चुपचाप सहन कर लेती थी, पर कोर्ट--कचहरी, पुलिस आदि का सहारा न लेती थी। लेकिन आज चाहे वह प्रतिशोध की भावना से हो या कुछ असामाजिक व्यक्ति की सलाह से हो बात--बात में नारी अपने तो घर्षिता बताने में भी कुंठाबोध नहीं करती। अतः प्रस्तुत कहानी की रचना कर प्रतिभा जी ने अपनी प्रगतिशील नारी दृष्टि का परिचय दिया है।

-: भारतीय परिवेश और स्त्री जीवन :-

डॉ० प्रतिभा राय का संपूर्ण रचना संसार पाश्चात्य और भारतीयता के द्वन्द्व से निर्मित है। लेकिन इस द्वन्द्व में भारतीयता का पृष्ट पोषण ही उनका मुख्य उद्देश्य है । ऐसा नहीं है कि प्रतिभा जी पश्चिम की औरत संबंधी नयी सोचों से अनभिज्ञ हैं, लेकिन परंपरागत भारतीय जीवन मूल्यों में जितना कुछ सार्थक है, प्रासंगिक है और मानवीय है उसे प्रतिभा जी सहर्ष स्वीकार करती हैं। प्रतिभा जी अपने नारी पात्रों को मुक्त देखना चाहती हैं लेकिन नारी मुक्ति का जो रूप अमेरिका और पश्चिमी देशों में मौजूद है, वह उन्हें मान्य नहीं है। मुक्तिकामी वैचारिकता रखते हुए भी उनकी नारियाँ भारतीय गुणों से मंडित है। एक भारतीय नारी के लिए उसका पति उसका सर्वस्व है। पत्नीत्व का अधिकार उसके लिए गौरव की बात है। पति के चले जाने से जैसे उसके माथे के ऊपर से किसी ने छाता हटा लिया है। धूप, वर्षा, तूफ़ान के लिए उसके लिए और कोई सहारा नहीं है। 'स्त्री' कहानी की नायिका सुभद्रा देवी के लिए यद्यपि उनका पति कभी सहारा नहीं रहा है, तो भी पति की मृत्यु पर वह टूट पड़ती है। पति ने जिन्दगी भर उसे अपने से अलग रखा। दूसरी शादी की। लेकिन सुभद्रा देवी उन्हें पूजा करती रही और उनके मृत्यु के बाद विधवा जीवन व्यतीत करने लगी। इस वैधव्य यंत्रणा के बारे में प्रश्न करने पर सुभद्रा देवी का उत्तर है "ईश्वर को साक्षी मानकर मैंने

उनसे विवाह किया था। इस विवाह का प्रमाण पत्र केवल मेरा हृदय है। उन्होंने मुझे क्षणिक सुख के साथी के रूप में ग्रहण किया था। उन्होंने मुझे रूपजीवी नारी समझ कर मुझसे केवल सुख की कामना की थी। पर मैं तो उन्हें पूजा करती थी – पति के रूप में। इसलिए मुझे अस्वीकार करने के बावजूद में उन्हें अस्वीकार कैसे करती। फिर, दूसरों के लिए जलने में जो सुख मिलता है वह मुझसे अधिक और कौन जान सकता है? वैधव्य (विधवा जीवन) यदि मुझे उनकी पत्नीत्व की स्वीकृति देती है, तब मैं उस अधिकार को क्यों छोड़ूँ? उनके लिए विधवा जीवन व्यतीत करने में नारीत्व में जो गौरव निहित है, उनके पत्नीत्व के अभाव में सारा जीवन वसन–भूषण से मंडित होकर भी नहीं।''[१०]

यह है भारतीय परिवेश में एक भारतीय नारी की छवि। ऐसा नहीं है कि प्रतिभा जी की नायिकाएँ पाश्चात्य सभ्यता से परिचित नहीं है। पाश्चात्य प्रभाव से ओत–प्रोत उनकी नारियाँ अपनी चाल–चलन से बेहद आधुनिक हैं और विचारधारा के धरातल पर अत्यधिक प्रगतिशीला भी। बावजूद इसके उनमें भारतीय परिवेश की ही ललक है। 'विधुर दाम्पत्य मधुर आस्वाद' कहानी की नायिका मीरा उच्चशिक्षिता है। विदेश में अनेक वर्ष रहकर उसने अनेक विदेशी डिग्रियाँ हासिल की है और यूरोप में ही मृणाल के साथ प्रेम विवाह किया है। लेकिन मृणाल की चरित्रहीनता के कारण, अपनी विदेशी सहेली के परामर्श से, पहले वह पति से विवाह विच्छेद के लिए कोर्ट का सहारा लेती है लेकिन जब मृणाल की शारीरिक अकर्मण्यता की खबर को सुनती है तब अभियोग वापस ले लेती है। सहेली क्लारा इसे मीरा का पागलपन समझती है और मीरा से प्रश्न करती है कि क्या इस यौवनावस्था में भी वह संपूर्ण जिन्दगी अपने अकर्मण्य पति के पास 'फेथफुल' रह पायेगी? तब मीरा जो उत्तर देती है उसमें एक भारतीय नारी का

१०. प्रतिभा राय – असमाप्त, आद्या प्रकाशनी, कटक पाँचवाँ सं० १९९५ पृ० १३१–१३२

गुण ही परिलक्षित होता है-- "क्लारा ! माई डियर, भारतीय नारी का प्रतिशब्द 'फेथफुल' है– यह तुम कह सकती हो। भारतीय नारी पुरुष की केवल प्रेमिका ही नहीं होती, वह प्रेरणा भी होती है। आज तक तुमने पत्नी मीरा को ही देखा है। जिसके हाथ में पति के विरूद्ध अभियोग की एक लम्बी तालिका है। अब तुम देख रही हो जननी मीरा को। मृणाल मीरा का एक असहाय शिशु है। यदि इस समय मैं इनका सहारा न बनू तो क्या क्षणिक सुख की कामना रखने वाली वे प्रेमिकाएँ मृणाल का सहारा बनेगी? मृणाल के साथ आज मेरा जो संपर्क स्थापित हुआ है उससे उनकी शारीरिक अक्षमता कहीं भी प्रतिबंध नहीं बनेगी। मृणाल के साथ छः वर्ष का वैवाहिक जीवन बिताने के बावजूद मैं माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त न कर सकी थी। आज मैं उसी गौरव से गौरवान्वित हूँ।"[११]

मीरा के उपर्युक्त कथन में एक भारतीय स्त्री का संपूर्ण तस्वीर प्रतिबिम्बित हो उठा है। तमाम आधुनिक चकाचौंध के बावजूद भारतीय नारी भारतीय परिवेश को नकार नहीं पाई है और उनमें वही गुण मौजूद है जो मीरा, सुभद्रा देवी आदि में है। 'ईशार केश' 'मनर मनुष्य', 'असती', 'संताप', 'अरण्य' आदि अपनी लगभग सभी कहानियों में प्रतिभा जी ने नारी के इस रूप का चित्रण किया है। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि प्रतिभा जी ने भारतीय परिवेश के अनुकूल रूप में ही अपनी नायिकाओं को प्रस्तुत किया है।

-: यौन प्रसंगों का सफल रूपायन :-

उड़िया कथा साहित्य में डॉ० प्रतिभा राय संभवतः पहली और एकमात्र लेखिका हैं जिन्होंने नारी और 'सेक्स' के विषय में सदियों से चली आती पुरातन मान्यताओं का खण्डन करते हुए नारी की यौन चेतना का सफल रूपायन किया है। प्रतिभा जी किसी भी तरह की नीति और आदर्श शिक्षा के बजाय जीवन की सच्चाई को वरीयता देने

११. प्रतिभा राय – ऐक्यतान, नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक, चौथा सं० १९९६, पृ०– १३२

वाली लेखिका हैं। आधुनिक जीवन के जटिल और बदले हुए 'पैटर्न' में नारी अपने सम्बंधों के बदले हुए समीकरणों को किस तरह निभा रही है, इस दकियानूसी समाज की मध्यकालीन धारणाओं को किस रूप में चुनौती दे रही है, इससे प्रतिभा जी भलि–भाँति परिचित हैं। अतः किसी भी तरह के नैतिक हस्तक्षेप को अपनी रचना पर हावी होने से बचाते हुए प्रतिभा जी जीवन सत्य को ही अपनी रचनाओं में व्यक्त करती हैं। 'ट्रलीवाली' प्रतिभा जी की सबसे सशक्त कहानी है। अपनी इस कहानी में प्रतिभा जी ने विवाह संस्था से बाहर नारी के मातृत्व के स्वीकार की जो बात कही हैं, उससे उनकी स्त्री साहसिकता का प्रमाण मिलता है। कृष्णा जी को यौन प्रसंगों का साहसिक चित्रकार कहा गया है, लेकिन प्रतिभा जी यहाँ कृष्णा जी से भी आगे नज़र आती हैं। व्यवस्था को बिना तोड़े वर्तमान सामाजिक संरचना के मध्य ही कृष्णा जी ऐसे प्रसंगों का चित्र अंकित करती हैं लेकिन प्रतिभा जी की ट्रलीवाली व्यवस्था को ही चुनौती देती है और विवाह न करते हुए भी एक के बाद एक कई पुरुष के साथ शारीरिक सम्बंध स्थापित करती है। मित्रो की तरह ही यहाँ ट्रलीवाली यौन तृप्ति को महज देह की भूख समझती है और उसी के आधार पर पुरुषों के साथ सम्बंध स्थापित करती है। इस तरह ट्रलीवाली एक तरह से भारतीय समाज व्यवस्था को ही चुनौती देती है।

प्रतिभा जी की स्त्री साहसिकता का दूसरा प्रमाण है उनकी कहानी 'फेरार' जिसमें उन्होंने नारी संबंधी सभी प्राचीन मानदंडों का विरोध करते हुए उसे बिल्कुल ही नए रूप में प्रस्तुत किया है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक पाशविक अत्याचारों पर केवल पुरुषों का एकाधिकार रहा है, लेकिन प्रतिभा जी ने यहाँ नारियों द्वारा पुरुष पर बलात्कार की घटना को दिखाकर अपनी साहसिकता का परिचय दिया है। 'अमोक्ष', 'बीजमंत्र', 'शाप्य', 'पाताल को सीढ़ी' आदि कहानियों में भी नारी की यौन–चेतना का सफल रूपायन हुआ है।

स्त्री चेतना सम्बंधी उपर्युक्त सभी बिंदुओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि प्रतिभा जी की कहानियों में इसके अनेकों रूप हैं। अपनी स्त्री चेतना में प्रतिभा जी ने जहाँ एक ओर स्त्री को द्रौपदी की भाँति उसकी अस्मिता से परिचित कराते हुए उसे अपनी 'सत्व' की लड़ाई के लिए जमींन पर उतारा है, वहीं दूसरी ओर उसे भारतीय नारी सुलभ गुणों से महिमा मंडित कराते हुए उसे सीता का अनुगामिनी भी बना दिया है। लेकिन जहाँ कहीं भी उन्होंने ऐसा किया है वह पुरुष की सहानुभूति हेतु नहीं किया है अपितु युगबोध के अनुरूप नारी मन से नारी का यथार्थ परक चित्र प्रस्तुत किया है।

❖ ❖ ❖

तीसरा अध्याय

सोबती तथा प्रतिभा राय की कहानियों में स्त्री-चेतना : एक तुलनात्मक अध्ययन

(कहानीकारों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के विशेष संदर्भ में)

समकालीन सांस्कृतिक बहस को अगर हम सरसरी निगाह से देखें तो पायेंगे कि उसमें दो मोर्चे सबसे महत्त्वपूर्ण है। पहला – स्त्री चेतना का उभार और उस उभार के बहुआयामी सामाजिक निहितार्थ तथा दूसरा दलित अभिव्यक्ति का है। स्त्रीचेतना जिन सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों में उभरी उनमें पर्याप्त अंतर है। इस अंतर का एक पक्ष तो यह है कि केरल में औरतों ने सबसे पहले सफलतापूर्वक आवाज़ उठाई और संघर्ष के कई मोर्चो पर जीत हासिल की। वहीं दूसरी ओर उत्तर प्रदेश या उड़ीसा में उच्चवर्गीय स्त्रियों की बात छोड़ दें तो केरल जैसी अभिव्यक्ति लगभग लापता है।

हिन्दी भाषी क्षेत्र और उड़िया बोलने वाला इलाका ये दो हमारे विवेचना के केन्द्र में है। यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि हिन्दी क्षेत्र का पश्चिमी भाग (पंजाब, मेरठ आदि) स्वयं हिन्दी भाषी इलाके मे विकसित हैं। यह विकास दो स्तरों से निर्धारित हुआ है – आर्थिक सम्पन्नता और शिक्षा की परिव्याप्ति। उड़ीसा कहना न होगा इन दोनों कसौटियों पर काफी पीछे है। इसलिए कृष्णा सोबती और प्रतिभा राय दोनों के स्त्री चरित्र अगर एक जैसे नहीं है तो इसका कारण दोनों के सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि में अन्तर है। कथाकार अपनी जमीन से जुड़कर ही प्रामाणिक लेखन कर पाता है और अगर हम प्रामाणिकता को एक यांत्रिक अर्थ में न लें तो कृष्णा सोबती और प्रतिभाराय दोनों ही लेखिकाओं का कथा संसार असलियत के ताने–बाने में है। दोनों लेखिकाओं का कथा संसार इस तथ्य को रेखांकित करता है कि अगर संदर्भ विशेष को ठीक–ठीक समझना है तो चरित्र के सामाजिक परिवेश को जानना होगा। एक उदाहरण से शुरूआत करें – पेट अगर भरा हो तो मानसिक विकास के आयामों की खुलने की संभावना बनती है, वरना चिंतन का पूरा दायरा उदर पूर्ति के इर्द–गिर्द सिमट कर रह जाता है।

पिछले अध्यायों में हमने देखा कि कृष्णा जी की मित्रो और प्रतिभा जी की

ट्रलीवाली दोनो ही पुरुष वर्चस्व को खंडित करने वाली चेतनापूर्ण नारी हैं। लेकिन चेतना का यह स्तर दोनों ही नायिकाओं में भिन्न है। मित्रो आर्थिक विपन्नता से दूर बहुत दूर है। उसे न धन का लोभ है, न घर की मालकिन अथवा गृहस्थ होने की इच्छा। उसकी एक ही इच्छा सर्वथा बनी रहती है– 'बस, मुझे चबा डालो या निगल डालो।'[१] जबकि ट्रलीवाली का अधिकांश संघर्ष उसके उदर पूर्ति के लिए है। इसलिए दोनों के चिंतन में भी भिन्नता है।

मित्रो जिसकी बेवाक बयानी ही उसके चरित्र एवं व्यक्तित्व की विशेषता है, में यौन आकर्षण का भार हमेशा बना रहता है। इस संदर्भ में कृष्णा जी का यह कथन काफी सार्थक होता हुआ दिखाई देता है कि "देह की गुन–गुनी गरमाहट और आत्मा की निर्मल उन्मुक्तता से मानवीय चेतना और अस्मिता की पहचान करती है।"[२] ठीक इसी के संदर्भ में मित्रो का व्यक्तित्व उन सभी मान्यताओं के विरूद्ध जाता है जिसमें एक पति से संतुष्टि का भाव हो या पति–परमेश्वर जैसी परिकल्पना हो। वास्तविकता से भरी इस पूरी कहानी में मित्रो नारी सम्बन्ध एवं उसके यौन सम्बन्धों में विश्वास रखती है। अपनी माँ की तरह वह भी कामोद्दीपक नारी है, जिसे अपने पति रूपी एक पुरुष से संतुष्टि नहीं है। तभी तो वह कहती है – "अब तुम्हीं बताओ जिठानी, तुम जैसा सत–बल कहा से पाऊँ–लाऊँ ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता।.....बहुत हुआ हफ्ते–पखवारे ..... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास कि मछली सी तड़पती हूँ।"[३] मित्रो की इस प्रकार की यौन उत्कंठा उस पुरुष प्रभुत्व समाज की ही देन है जिसने उसकी माँ को और आने वाले समय में उसे भी रमणी होने के लिए

१. कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, तीसरा सं० १९६४, पृ० ४४
२. कृष्णा सोबती – सोबती एक सोहबत, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम सं० १९८९, पृ० ३९६
३. कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, तीसरा सं० – १९६४ पृ० १९

मजबूर करती परिस्थितियों को जन्म दिया है। मित्रो का यह विद्रोह उसके शारीरिक अतृप्ति के विरूद्ध है जो उसकी बेलाग और बेवाक – बयानी के जरिए बाहर आता है। इस तरह मित्रो हमारे सामने परंपरा विरोधी पात्र के रूप में सामने आती है।

परंपरा विरोधी पात्र तो ट्रलीवाली भी है। परंपरा विरोधी वह इस हद तक है कि भारतीय समाज में सदियों से स्थापित सांस्थानिक बंधन को नकार कर भी अपनी देह की ज़रूरत को पूरा करती है और पाँच–पाँच बच्चों की माँ बनती है। इस संदर्भ में ट्रलीवाली कहती है "पति के न होते हुए माँ बनने में समाज का यह प्रतिबंध क्यों? ..... पशु–पक्षियों में विवाह नहीं होता तो क्या माँ का स्नेह नहीं होता ?[४]

विवाह संस्था के बाहर ट्रलीवाली की मातृत्व की इस स्वीकारोक्ति को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि निश्चय ही ट्रलीवाली ने उड़ीसा जैसी पारंपरिक सामाजिक संरचना में एक बहुत बड़ा विद्रोह किया है। लेकिन ट्रलीवाली का यह विद्रोह मित्रो की तरह विचारात्मक विद्रोह नहीं बन सका है। वास्तव में आर्थिक सम्पन्नता बहुत बड़ी चीज है। अपने पात्रों की सामाजिक आर्थिक स्थिति कभी भी कृष्णा जी के सोच का विषय नहीं रहा है। इसलिए उनके मित्रो के विचारों में जो उन्मुक्तता है वह प्रतिभा जी की ट्रलीवाली में दिखाई नहीं देता है। यूँ तो दोनो ही नारियाँ व्यवस्था से असंतुष्ट हैं और उसमें परिवर्तन चाहती हैं लेकिन दोनों के केन्द्रीय चिंतन में भिन्नता है। ट्रलीवाली की केन्द्रीय चिंता आर्थिक है जबकि मित्रो अपनी शारीरिक भूख को सामूहिक मानस से जोड़कर देखती है।

आर्थिक असुविधाओं की तरह नैतिक–अनैतिकता की रूढ़ियों को भी कृष्णा जी ने अपनी रचना यात्रा में कहीं स्थान नहीं दिया है, जबकि प्रतिभा जी का रचना संसार बहुत कुछ इसी पर टिका हुआ है। अपने पात्रों की नैतिक अनैतिक स्थिति कृष्णा जी

४. प्रतिभा राय – हरित पत्र, नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक, दूसरा सं० १९९२, पृ० १०६

के सोच का विषय न होने के कारण उनकी नायिकाओं का चेतना का स्तर प्रतिभा जी की नायिकाओं से ऊँचा रहा है। नैतिकता, अनैतिकता से दूर कृष्णा जी की नायिकाएँ वह सब कुछ करती हैं, जिसमें उन्हें सुख की प्राप्ति होती है चाहे वह अर्थोपार्जन हो या फिर पर–पुरुष यौन सम्बन्ध। 'कुछ नहीं कोई नहीं' की शिवा का पुराने प्रेमी के लिए बसे बसाये घर को त्याग देना, 'दो राहे दोबा' की कुंतल का पवित्रता, नैतिकता को नकारते हुए गुप्ता नामक प्रेमी पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना या फिर 'मित्रो मरजानी' की मित्रो का अपनी देह की ज़रूरत को स्वयं अपनी जुबान से कहना यदि संभव हो सका है तो वह इसलिए कि कृष्णा जी ने पवित्रता–नैतिकता जैसी अंध रूढ़ियों से अपने पात्रों को अलग रखा है। पुरुषनुमा औरत का चरित्र लिए ये नारी पात्र आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं को बड़े ही सहज ढंग से पूरी करती चलती हैं। यहाँ आकर कृष्णा जी के ये नारी पात्र नैतिकता–अनैतिकता के सवाल से परे यौन आकर्षण को महज एक ज़रूरत मानने लगती हैं और शील, पातिव्रत्य तथा शारीरिक पवित्रता जैसी सामाजिक – नैतिक मान्यताओं को एक कोने में रखकर अपनी स्वच्छन्दता एवं स्वतंत्र सत्ता को परिमार्जित करते चलती हैं।

प्रतिभा जी की नायिकाओं में स्थिति इसके विपरीत है। प्रतिभा जी की स्त्री चेतना में नैतिकता एक बहुत बड़ी चीज है। अपने साक्षात्कार में प्रतिभा जी कहती हैं – "आज नारी पुरुष के बराबरी तक पहुँचने की चेष्टा में प्रतियोगिता मूलक मनोवृत्ति लेकर चिरंतन मूल्यबोध को फेंक देना तथा मानसिक और शारीरिक शुचिता को बंधन सोचना ठीक नही है। पवित्र चिर दिन पवित्र है – वह प्रगति का बाधक नहीं है। चरित्र की दृढ़ता न होने से अन्याय का मुकाबला करना संभव नहीं है। ..... उच्छृंखल और दुर्बल चरित्र की नारी विश्व के किसी भी संस्कृति में नारीत्व का प्रतिनिधि नहीं हो सकती है।"[५]

५. प्रतिभा राय – साक्षात्कार

प्रतिभा जी के उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नारीत्व की संवाहिका उसकी प्रतिनिधि बनने के लिए चरित्र की दृढ़ता होना ज़रूरी है जो काफी हद तक नैतिकता के सवाल से ही जुड़ा हुआ है। शायद, चरित्र की इस दृढ़ता के अभाव के कारण ही अपंनी अत्यधिक चेतना–सम्पन्न नारी ट्रलीवाली का अंत भी प्रतिभा जी उसके दुःखद मौत में देखती है। प्रतिभा जी स्त्री को बिल्कुल स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में देखना चाहती हैं लेकिन वह स्वतंत्र व्यक्तित्व उच्छृंखल हो वह उन्हें मान्य नहीं है।

'पाप' कहानी की नायिका सरमी जीवन भर अपनी अतृप्त वासना को लिए तड़पती रही, उन्मादिनी रोग से पीड़ित रही, लेकिन मित्रों की तरह अपनी देह की ज़रूरत को अपनी जुबान से न कह सकी तो इसका कारण नैतिकता – अनैतिकता का सवाल है। 'पाप' कहानी की नायिका ही नहीं, नैतिकता–अनैतिकता के इस द्वन्द्व में उनकी लगभग सभी नारी पात्र जीती दिखाई देती हैं । नैतिकता अनैतिकता की भावना उनकी सम्पन्न नारीपात्रों में अधिक है। यद्यपि प्रतीभा जी ने अपनी सम्पन्न नायिकाओं के मुख से यह कहलवाकर कि – "धर्म–अधर्म पाप–पुण्य की परिभाषा में बदलाव आया है"[६] उनमें चेतना जगाने की कोशिश की है लेकिन यह कोशिश कहानी के अंत में नैतिकता से जुड़ जाती है। इसलिए नारी चेतना का जो विस्तार उनकी हाशिए की नायिकाओं में दिखाई देता है, वह उनके सम्पन्न पात्रों में नहीं। यदि सम्पन्न नारी पात्रों में यह – चेतना कहीं दिखाई देती भी है तो वह चेतना विद्रोह और बदले की भावना का रूप ले लेती है। 'फेरार' कहानी की नायिका हो या 'उल्लग्न' कहानी की नायिका अथवा 'अन्य पृथ्वी' की नायिका सभी में मुक्ति चेतना तो है लेकिन वह चेतना, पुरुष मात्र के प्रति विद्रोह के रूप में दिखाई देती है। नैतिकता के प्रति अत्यधिक लगाव उनके सम्पन्न नारी पात्रों में अधिक और हाशिए के पात्रों में कम क्यों दिखाई देती है यह भी एक

६. प्रतिभा राय – अनाबना, आद्या प्रकाशनी, कटक, तीसरा सं० – १९९३, पृ० १८

विचारणीय सवाल है और वह यह कि मर्यादा का सवाल सम्पन्न परिवारों के लिए जितना महत्वपूर्ण है विपन्न या हाशिए के लोगों के लिए नहीं है। इस तरह प्रतिभा जी ने यहाँ भी समाज की यथार्थता को ध्यान में रखा है।

कृष्णाजी और प्रतिभा जी की स्त्री–चेतना के तुलनात्मक अध्ययन में उनकी नारियों की विद्रोही प्रवृति भी एक महत्वपूर्ण आधार है। पारंपरिक सामाजिक संरचना और पुरुष प्रभुत्व वाले समाज के विरूद्ध आवाज़ उठाकर दोनो ही लेखिकाओं की नारियों ने अपनी विद्रोही प्रवृति का परिचय दिया है। लेकिन विद्रोह का यह रूप जहाँ कृष्णाजी की नारियों में पश्चाताप में बदल जाता है, वहीं प्रतिभा जी की नारियों में वह प्रतिशोध का रूप लेता नज़र आता है।

कृष्णा जी की नारियों का विद्रोही स्वर पूजा–पाठ या भगवत् भजन तथा आध्यात्मिक शक्ति के लिए नहीं है और न ही पितृसत्तात्मक समाज में कुरीतियों एवं रूढ़िवादियों के लिए, बल्कि नारी को व्यक्ति मानने तथा उसका समाज में कुछ बोध कराने मात्र के लिए है। स्वयं को मुक्त रखने की आकांक्षा रखने वाली कृष्णाजी की नारियाँ विद्रोह तो करती हैं लेकिन सभी छोटी लम्बी कहानियों में उनका विद्रोह मुखर न बनकर दबा–दबा सा रह जाता है। भरपूर जीने की लालसा में, भावना में आकर उनकी नारियाँ विद्रोह तो कर लेती हैं, पर उनके विद्रोह मे एक प्रकार का पश्चाताप भी नज़र आने लगता हैं। मित्रो का ही उदाहरण लें –

मित्रो का सम्पूर्ण विद्रोह उसकी शारीरिक अतृप्ति के विरूद्ध है जो उसकी बेलाग और बेवाक बयानी के जरिये बाहर आता है। कस्बाई एवं ग्रामीण नारी होने पर भी वह ऐसी अल्हड़ है जो सरदारी लाल से शादी शुदा होने के बावजूद अन्य के साथ उन्मुक्त यौन सम्बन्ध एवं विचरण की कामना रखती है। और यह कामना सिर्फ मन में ही न रख कर प्रत्यक्ष रूप से सभी के सामने कहती है। पंजाबी परिवेश और पंजाबी लहजे को

लिए हुए इस कहानी में वर्जित प्रसंगों को रखकर कृष्णाजी स्वयं भी भारतीय समाज में एक प्रकार का विद्रोह का काम करती है। यहाँ "मित्रो मरजानी के रूप में एक औरत है जो औरत होने की मजबूरी के खिलाफ़ विद्रोह करती है।"[७]

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मित्रो का यह विद्रोह किसी के प्रतिशोध के लिए न होकर उसकी स्वयं की शारीरिक भूख के प्रति है। जिससे प्रत्येक मानव कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में ग्रसित है। मित्रो की बेवाक–बयानी और देह की तुष्टि के लिए खुला आह्वान ही उसका उस भाव के प्रति विद्रोह है जिसमें वह अपने पति सरदारी लाल द्वारा निगल जाने की या चबा जाने की इच्छा रखती है। इस प्रकार मित्रो अपनी शारीरिक अतृप्ति को पूर्ण रूप से अपना मानकर एक तरह से भारतीय समाज में हलचल पैदा कर देती है। मगर उस हलचल का अंत ज्यादा नकारात्मक न होकर वह मित्रो के पश्चाताप में बदल जाती है और माँ के काम को दुत्कारती मित्रो कहती है – "तू सिद्ध भेरों की चेली, अब अपनी खाली कड़ाही में मेरी और मेरे ख़सम की मछली तलेगी ? सो न होगा, बीबो कहे देती हूँ।"[८] और अपने को पति के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होती हुई पति की होकर जीने में विश्वास रखती है।

मित्रो ही नहीं 'कुछ नहीं कोई नहीं' की शिवा भी अपने जीवन को सही ढग से जीने के लिए स्वयं के द्वारा खोजे गए पथ में भटक जाती है। और अनैतिकता के कगार पर आकर जहाँ सिवाय कुंठा, एकाकीपन, पश्चाताप आत्मग्लानि के अलावा कुछ भी नहीं है, खड़ी हो जाती है। जिन्दगी को पूरी तरह बटोरने के दुःसाहस में शिवा विद्रोह तो करती है मगर उसका विद्रोह उसके स्वयं के लिए खाली जाता है और वह पश्चाताप और आत्म ग्लानि के अलावा कुछ और प्राप्त नहीं कर पाती है। अन्ततः वह रूप (पति)

७. अर्चना वर्मा – साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १ फरवरी १९८१, पृद्ध ६
८. कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा सं०– १९६४, पृ० ६४

की ही होकर जीने में विश्वास करती है और कहती है – "अँधियारे में कुछ हाथ नहीं लगा, पराये प्यार का झूठा अधिकार तक नहीं, कोई दावा तक नहीं।"[६]

प्रतिभा राय की ट्रलीवाली नारी की पारंपरिक जीवन धारा और उसके साथ पुरुष दृष्टि में एक विप्लवकारी परिवर्तन चाहती है। इसलिए वह पुरुष सत्तात्मक समाज और उस समाज द्वारा बनाई गई सांस्थानिक बंधनों के प्रति विद्रोह करती है जिसमें न उन्हें कोई ग्लानि है और न पश्चाताप। ट्रलीवाली से यदि थोड़ा और आगे चलें तो प्रतिभा जी की कहानियों में उस नारी के दर्शन होते हैं जिसमें विद्रोह से अधिक प्रतिशोध की भावना दिखाई देती है। 'फेरार' कहानी की सुरेखा हो या 'उल्लग्न' कहानी की सुलता अथवा 'अन्य पृथ्वी' की बिजली सभी में विद्रोह का रूप प्रतिशोध में परिणति हो गया है। द्रौपदी के आदर्श से अनुप्राणित होने के कारण प्रतिभा जी की ये नायिकाएँ रक्ताक्त विप्लव में विश्वास करती हैं। इस विप्लव में उन्हें न कोई ग्लानि है और न ही पश्चाताप। इस तरह हम कह सकते हैं कि कृष्णा सोबती तथा प्रतिभा राय दोनो ही की नारियों में विद्रोही प्रवृति तो है लेकिन उनके विद्रोह का आयाम अलग है।

कृष्णाजी तथा प्रतिभाराय दोनों ही लखिकाओं के कथा साहित्य में व्यक्ति के स्तर पर स्त्री के अस्तित्व की तलाश की अनुगुँज मिलती है। लेकिन यह अनुगुँज जहाँ कृष्णाजी में पूरे साहस के साथ गुंजित है वहीं प्रतिभाजी में यह थोड़े असमंजस के साथ है। समाज में व्यक्ति सिर्फ पुरुष ही है ऐसा न सोबती के यहाँ नज़र आता है और न प्रतिभा जी के यहाँ। लेकिन स्त्री के व्यक्तित्व की इस लड़ाई में प्रतिभा जी अपनी समाज की वास्तविकता के कारण जगह–जगह स्त्री की असमर्थता को भी व्यक्त करती हैं। प्रतिभा जी लिखती हैं – "स्त्री जन्म से ही देखती आ रही है कि स्त्री होना ही वस्तु है, फिर वह कैसे व्यक्ति हो सकती थी। व्यक्ति होने के लिए जितनी शिक्षा चाहिए,

६. कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं० १९८०, पृ० ८३

जितना साहस चाहिए उतना श्रीया को कहाँ से मिलता जो वह व्यक्ति होने का दावा करती। धन, सम्पति, सुन्दरता, आडम्बर सोहाग मनुष्य को व्यक्ति नहीं बनाता है। जो चीज मनुष्य को व्यक्ति बनाता है, वह है उसकी समझने की शक्ति उसका साहस और आत्मविश्वास। श्रीया के पास यह सब न था।"[१०]

सोबती के नारी पात्रों में नारी की अस्मिता पुरुष के साथ जोड़कर देखा जाय ऐसा नहीं है। इसलिए सोबती नारी की पहचान के उन अंशों को दर्शाती है जिसमें परिवार का फलना–फूलना पुरुष जाति से हटकर नारी जाति से जुड़ा हुआ है। यद्यपि अपनी 'उत्तरदायी' कहानी में प्रतिभा जी ने समाज, शास्त्र तथा पंडो–पुरोहितों की चुनौती देते हुए अपनी नायिका को व्यक्ति के रूप में उसे उसका अधिकार दिलाया है तो भी व्यक्ति का अधिकार पाकर स्त्री वंशलता की वृद्धि कर सकती है, यह उन्हें विश्वास नहीं हैं। अतः अमोक्ष कहानी में लिखती हैं – "लड़कियाँ अबला हैं दुर्बल हैं। वनिता–लता तो वह हो सकती है, पर वंशलता नहीं । वंशलता की एक छोटी सी साखा होने की योग्यता भी उनमें नहीं है।"[११]

इस तरह स्पष्ट है कि व्यक्ति के स्तर पर स्त्री के अस्तित्व की लड़ाई में प्रतिभा जी सोबती से कहीं कहीं कमतर नज़र आती है। कृष्णा जी यह लड़ाई यदि पूरे साहस के साथ लड़ पाई हैं तो वह पंजाबी समाज की वास्तविकता है। इस वास्तविकता को रेखाकिंत करने के लिए पंजाब की नारियों की स्थिति का रेखांकन ज़रूरी है। इस संदर्भ में कृष्णा जी के एक वक्तव्य को ही हम यहाँ उद्धृत करते हैं जिसे उन्होने इलाहाबाद की एक गोष्ठी में गुस्से से कहा था–" आप यू०पी० वाले लोग क्या जाने पंजाब की जिन्दगी क्या थी और पंजाबी चरित्र क्या होता है। आपके यहाँ तो पंजाबी

१०. प्रतिभा राय – मनुष्य स्वर, आद्या प्रकाशनी, कटक, तीसरा सं० १९९३, पृ० ६५
११. प्रतिभा राय – मोक्ष, आद्या प्रकाशनी, कटक, प्रथम सं० १९९६, पृ० –४

चरित्र आई ही नहीं। लुटे–पिटे, सकुचाए हारे शरणार्थी आए और उन्हें देखकर ही आपने तय कर लिया कि शायद यही पंजाब है। अपनी कुंठाओं और 'फ्रस्टेशन' में आपने उन पर कुछ कहानियाँ लिख डाली। मेहनत और स्वतंत्रता के बीच पली पंजाबी औरत जब छाती तान कर खड़ी होती है तो आप जैसों के तो पसीनों छूट जाय''।[१२] जो औरत इतनी स्वतंत्रता के बीच पली हो वह यदि अपनी व्यक्तित्व की लड़ाई पूरे साहस के साथ लड़े तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं हैं। प्रतिभा जी की नायिकाओं में यह स्वतंत्रता कभी रही ही नहीं। जिस समाज में उसने जीना जाना है उसमें वह देखती आई है कि स्त्री मात्र ही वस्तु है तो वह अपने व्यक्तित्व की लड़ाई पूरे साहस के साथ कैसे लड़ती। अतः स्त्री की अस्मिता की लड़ाई में व्यक्तित्व के स्तर पर उसकी अस्मिता की तलाश में यदि प्रतिभा जी बीच–बीच में चिंता ज़ाहिर करती हैं तो वह उनकी कमजोरी नहीं, अपितु यह भी उस समाज की देन है।

कृष्णा सोबती तथा प्रतिभा राय की स्त्री चेतना के तुलनात्मक अध्ययन के क्रम में एक महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि जहाँ सोबती की स्त्री चेतना के केन्द्र में विवाहित स्त्री है, वहीं प्रतिभा जी की चेतना सम्पन्न नारियों में अधिकांशतः अविवाहित युवती। विवाहित स्त्री अपनी स्त्री चेतना के केन्द्र में होने के कारण सोबती स्त्री की स्थिति का चित्रण, उसकी चेतना का रेखांकन पारिवारिक ढाँचे के मध्य करती हैं। मित्रो हो, 'ऐ लड़की' की वृद्धा माँ हो, 'कुछ नहीं कोई नहीं' की शिला हो अथवा 'एक दिन' की शीला और श्यामा हो 'सिक्का बदल गया', की साहनी हो या फिर 'जिगरा की बात', की अमरो हो ये सभी चेतना सम्पन्न नारियाँ विवाहित हैं और सोबती यहाँ परिवार संस्था के भीतर ही स्त्रीमुक्ति– चेतना का रेखांकन करती है। ऐसा नहीं है कि प्रतिभा जी ने परिवार संस्था के अन्तर्गत स्त्री का चित्रण नहीं किया है। पारिवारिक सामाजिक रिश्ता ही

१२. राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम सं० १९८०, पृ० ४२

उनकी कहानियों की आधारशिला है लेकिन इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रतिभा जी ने स्त्री की स्थिति का जो रेखांकन किया है, उसमें स्त्री की 'चेतना' कम, उसकी आदर्श प्रियता का चित्रण ही अधिक हुआ है। ('मनुष्य स्वर' की नायिका अपवाद कही जायेगीं) प्रतिभा जी की चेतना सम्पन्न नारियों में नारी अधिकांशतः अविवाहित हैं। उनकी चेतना सम्पन्न नारियों में सबसे पहला नाम ट्रलीवाली का आता है जो विवाह संस्था को ही नकार देती है । ठीक उसी तरह 'उल्लग्न' कहानी की सुलता, 'फेरार' कहानी की सुरेखा 'अन्य पृथ्वी' की बिजली सभी अविवाहित हैं। प्रतिमा जी की स्त्री चेतना के इस रूप को देखते हुए दो निषकर्ष निकाले जा सकते हैं।

पहला, प्रतिभा जी विवाह संस्था को एक दमनकारी संस्था के रूप में देखती हैं जिसमें एक बार चले जाने पर नवाचार की, मुक्ति की, अपने होने के अनुभव की, स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की क्षमता का अवसान हो जाता है।

दूसरा, डॉ० राय के इस चित्रण से यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि वे भावी पीढी को मुक्त देखना चाहती हैं। पुरानी पीढी के लोगों से उन्हे अब कोई आशा नहीं है। उस पीढी ने अपना जीवन जैसे तैसे गुजार दिया है। अगर स्त्री–पुरुष समानता वाला समाज बनाना है तो उसका दायित्व गुलामी की जंजीर से मुक्त अविवाहित लड़कियों–स्त्रियों पर है।

कृष्णा सोबती तथा प्रतिभा राय की स्त्री चेतना के उपरोक्त सभी बिदुओं को समेटते हुए निष्कर्ष के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि सोबती तथा प्रतिभा राय की जीवन दृष्टियों में बहुत कुछ समानता तो है, लेकिन उससे ज्यादा गौर तलब है कि वे अपना रचना संसार जिन तत्वों से बुनती हैं उन तत्वों की जमीन अलग किस्म की है। एक जगह उत्फुल्ल लहलहाती फसल है तो दूसरी जगह अभी खेत के खेत सुने पड़े हैं। एक जगह जीने की भरपूर आजादी मिलने के आसार है तो दूसरी जगह बहुस्तरीय

प्रतिबंध । जीने की पूरी आजादी का सुलभ न होना बाहरी परिवेश से संभव होता है लेकिन यह धीरे–धीरे अन्दर तक घुस जाता है, आत्मा में घुलमिल जाता है। और, ऐसे में अगर मुक्ति की संभावना दिखे तो एक बारगी विश्वास नहीं होता हैं। संशय और द्विविधा की स्थिति बनती है और मुक्त तथा अधीनता के मार्ग एक दूसरे को छूते–छूते, घकियाते हुए दिखते हैं। प्रतिभा जी की कहानियों के जो नारी पात्र हमने देखे हैं, उनमें कहने की ज़रूरत नहीं, उक्त स्थिति कई बार पैदा होती है। एक बार विद्रोह करना, फिर उस विद्रोह के औचित्य पर शंका करना और अन्ततः द्विविधा और हिचकिचाहट के भाव में डूब उतराकर आत्मग्लानि वरण कर लेना इसी बात का सूचक है। सतही दृष्टि से देखने पर इससे यह निष्कर्ष निकलने की संभावना बनती है कि ये नारी पात्र खुद ही मुक्ति नहीं चाहते हैं अथवा मुक्ति की जो संकल्पना इनमें पहले बनती है, उसे बाद के दिनों में नकार देते हैं। और, इनके लिए तो वनलता ही आदर्श है। वह वनलता जो किसी पर आश्रित रहती है, किसी के सहारे ऊपर चढती है। लेकिन ये निष्कर्ष जैसा मैने पहले कहा सतही हैं। सदियों की गुलामी को एक झटके में निर्मूल कर देना मानव प्रकृति में शायद शामिल नहीं है। अगर यह सांस्कृतिक रूप से संक्रमण का समय है तो इसका आशय यह हुआ कि जीवन की पुरानी अवधारणाएँ टूट रही है, बिखर रही है और नया उतनी तेजी के साथ निर्माण की प्रक्रिया में है। कृष्णा सोबती की स्त्रियॉं दैहिक संतुष्टि की जो प्रबल आकांक्षा व्यक्त करती हैं उसके मूल में एक मुक्त, और सच्चे अर्थो में मुक्त समाज के सपने हैं। ज़रूरी नहीं कि यह सपने उसी वक्त सच हो जाएँ लेकिन अगर सपने हैं तो उनसे जुड़ी मानसिकता भी है। यह मानसिकता ही उस पृष्ठभूमि की रचना करती है, जिस पर भविष्य के समाज को खड़ा होना है। दोनों ही कथाकारों का सृजन संसार इस बात का आश्वासन देता है कि आने वाला समय पराश्रय का नहीं होगा । सबके पाँव खुद मजबूत होंगे और अपनी राह चलनें के लिए

मुक्त और तत्पर । मुक्ति का यह आयाम एक तरफ आर्थिक है तो दूसरी तरफ वैचारिक या मानसिक और इन सबसे अलग एक तीसरा आयाम भी है जो अभिव्यक्ति का है अर्थात पुल्लिंगी भाषा के समान्तर स्त्री लिंगी भाषा का निर्माण । डॉ० मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में कहें तो पुरुष वाक्य के विरूद्ध स्त्री वाक्य की रचना। अस्तु।

❖ ❖ ❖

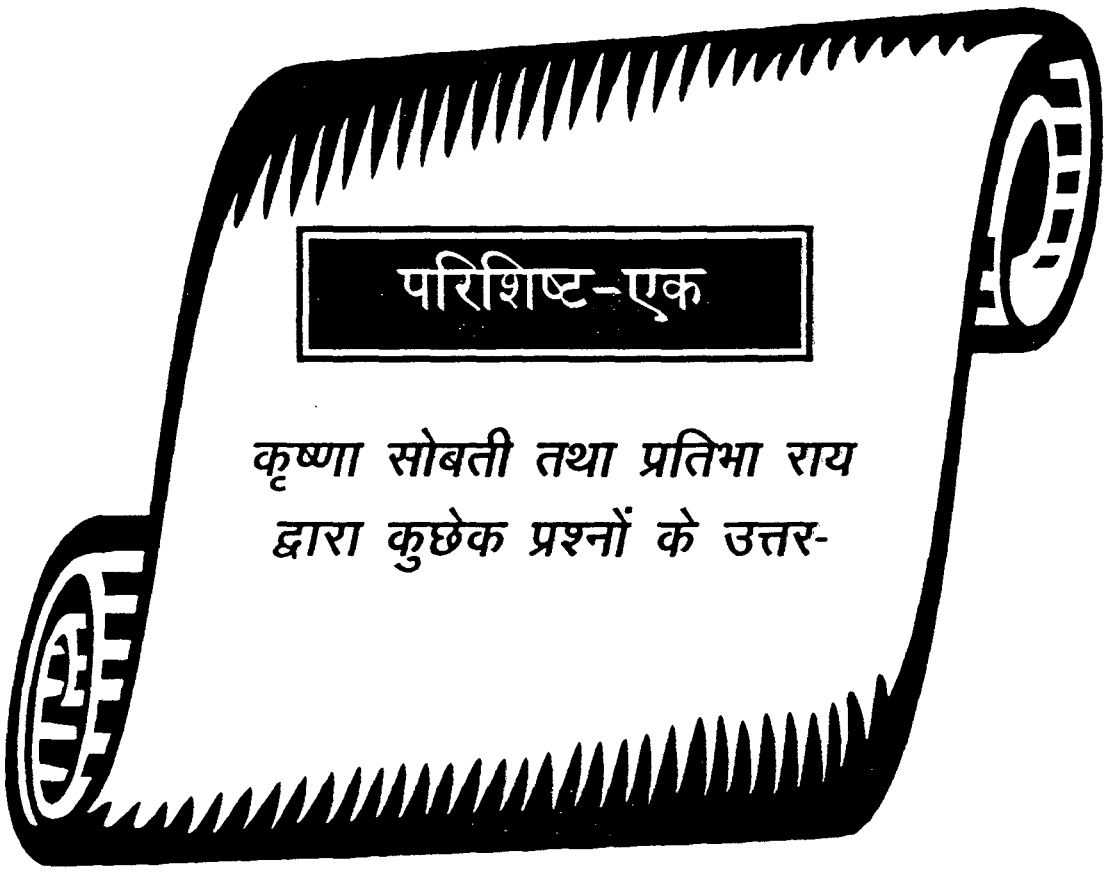

परिशिष्ट-एक

कृष्णा सोबती तथा प्रतिभा राय द्वारा कुछेक प्रश्नों के उत्तर-

कृष्णा सोबती जी द्वारा कुछेक प्रश्नों के उत्तर*

प्रश्न : सबसे पहले कुछेक शब्द आपकी रचना प्रक्रिया के बारे में पूछना चाहूँगा। लगता है क़लम उठाने से पहले और क़लम उठा चुकने पर भी आप देर तक सोचती, मनन करती रहती हैं। आपको स्पष्टतः कथानक की तुलना में चरित्र अधिक आकृष्ट करते हैं। क्या कहानी की प्रेरणा भी आपको किसी चरित्र–विशेष से मिलती है या किसी घटना–विशेष से ?

उत्तर : कुछ लोग होते हैं जो अकेले होते हैं। अकेले होते हैं और अँधेरे में भटकते हैं। अकेले ही अपने अकेलेपन को झेलते हैं और अगर उस अकेलेपन में टूट नहीं जाते तो उस दर्द को अपने में समेटते रहते हैं जो उन्हें अकेलेपन में संजोया होता है। ऐसा अँधेरा जो नितान्त अकेला और अपना होता है, मैंने जाना है। उसके साथ यह भी जाना है कि कुछ दर्द ऐसे भी होते हैं जो व्यक्ति के अकेलेपन से कहीं अधिक गहरे और कहीं अधिक बड़े होते हैं। उन्हें झेलने के लिए मन के अन्दर नहीं बाहर झाँकना होता है। अपने होने के दायरे से उठ इन दोनों के सीमान्त पर ही मरने की चुनौती दे जिया भी जा सकता है, और जीने के लिए मरा भी जा सकता है।

चाहने भर से ही हम संघर्ष और जूझने के नाम पर कुछ कल्पानाएँ कुछ सपने और अपने–अपने प्यार सहेजे इन सीमान्तों पर पहुँच सकते तो हममें से हर एक कभी न मरने वाले साहित्य का सृजन करने में लगा होता। पर ऐसा होता नहीं। न जीवन में जिसका प्रतिरूप साहित्य होता है और न साहित्य में जिसका दर्पण जीवन होता है। जीवन का संघर्ष जितना कठिन है साहित्य का

* प्रस्तुत साक्षात्कार नई कहानियाँ जनवरी – १९६६ और समकालीन भारतीय साहित्य अक्टूबर – दिसम्बर १९६४ से उद्धृत हैं।

उससे कम दुर्गम नहीं। साहित्य और जीवन दो नहीं, दो दीखते हैं। हर रचना का पहला शब्द, पहला भाव कहानी, उपन्यास या नाटक में रोपकर हम इन्हीं दोनों को एक करते चले जाना चाहते हैं, क्योंकि इन दोनों का सम्मिलित सच ही वह समूचा सच है जो हमें जीवन को झेलने, जूझने और सचमुच में जी जाने का अर्थ देता है। हमारी निज की सीमाओं के कारण बहुत बार जिंदगी के अधूरे सच जिन्हें हम अपनी छोटी सी खिड़की से देख लिया करते हैं, अपने कलात्मक पक्ष के बावजूद साहित्य में समूचे सत्य बनते बनते आधे झूठ बनकर रह जाते हैं। ऐसी ही कई कहानियों और उपन्यासों में एक कहानी अपनी भी जोड़कर दर्जन भर नाम गिना सकूँगी, जो बावजूद अच्छे कलेवर और सुथरे लेखन के एकांगी बनकर रह गए हैं। जिस लेखन में जान है, एक सत्य है जिसे हम आप सभी किसी न किसी रूप में पाने के लिए परिस्थिति से लड़ते हैं, हारते हैं, फिर लड़ते हैं – ऐसे ही संघर्ष का लेखन जीयेगा – कोई दूसरा नहीं।

प्रश्न : पुरुष लेखकों की तुलना में महिला–लेखको में आपको कौन–सी विशिष्टताएँ दिखाई देती हैं ?

उत्तर : वह संतुलन वह संयम और 'डिटैचमैन्ट' जो कला के सृजन के लिए ज़रुरी है महिला लेखकों में अक्सर नहीं मिलता। (नहीं हो सकता, ऐसा नहीं कहूँगी।) कभी ही किसी में होता है। हो तो वह 'महिला' और 'पुरुष' के ठप्पों से नजात पा साहित्य में एक व्यक्तित्व की तरह जमने की क्षमता रखती है। हाँ उनके द्वारा साधारण वासन्ती साहित्य का लेखन निश्चय की पत्र–पत्रिकाओं के लिए कारगर साबित हो सकता है। एक पाठक वर्ग ऐसे साहित्य को ज़रूर पढ़ता है और यह अपने आप में कोई छोटी प्राप्ति नहीं।

प्रश्न : लेखक के निजी अनुभव और सृजन–प्रक्रिया के आपसी सम्बन्धों के बारे में आप क्या सोचती हैं ?

उत्तर : मैंने कम लिखा है और मान लेना चाहूँगी कि जितना भी लिखा है, मैं उसे किसी उल्लेखनीय उपलब्धि के निकट नहीं पाती हूँ। हाँ एक छोटे से संतोष की अधिकारी अपने को ज़रूर मानती हूँ कि छोटे–बड़े ग़म ग़लत करने के लिए, समय का सदुपयोग करने के लिए या शौकिया ही अपनी एल्बम भर लेने की तरह वक्त–बेवक्त लिखकर न मैंने अपने को बहलाया ही है और न अपने साथियों और पाठकों पर अपनी रचनाओं द्वारा अत्याचार ही किए हैं।

कभी–कभार लिखती हूँ और लिखने में किसी भी किस्म की ढिलाई या जल्दबाजी बिल्कुल बेमानी होती है। लिखना क्योंकि बाहर का नहीं अन्दर का जोखिम है, मैं भरसक उससे बचना चाहती हूँ और जब कोई पेश नहीं जाती तो आख़िरकार लिखने के लिए काग़जों का इन्तजाम करवाती हूँ। काग़ज मेज पर रखवा लेने से ही लिखने बैठ जाऊँगी – कोई शर्त नहीं। इन दोनों को एक दूसरे पर हावी हो जाने में महीनों निकल जाते हैं। इस सारी कशमकश में मैं तटस्थ रहती हूँ (ऐसा मैं सोचती हूँ) और अपने तई दोनों में किसी एक को तरजीह नहीं देती। तीनों के सब्र जब एक दूसरे को ठीक पीटकर सही कर लेते हैं तो एक दिन उस सफ़र की शुरूवात होती है जिसे लिखना कहते हैं। कथानक में घटना चक्र की तुलना में चरित्र पक्ष के लिए मेरे आग्रह का संकेत ग़लत नहीं। कोई भी छोटी बड़ी घटना जो बाहर घटित होती है (मन के भीतर नहीं) एक ऐसी स्थिति है जिसकी निस्संगता को केवल पात्रों की 'इनवोल्वमैन्ट' से ही कोई अर्थ दिया जा सकता है। कल्पना की उड़ान कितनी ही बड़ी हो, कितनी ही विशिष्ट भी, कोई अच्छा लेखन अपने निज के अनुभव के बल पर

ही टिकता और उजागर होता है। पात्रों के चित्रण अथवा किसी भी तरह के वातावरण (लोकेल) प्रस्तुत करने के लिए कभी भी कुछ 'प्रोफ़ैशनल' (अपने अपने पैटैंट) स्ट्रोक्स ही काफ़ी नहीं होते। ईमानदारी तो यह है कि जिस पात्र को मैंने देखा भर है – जाना नहीं और जिया नहीं, उसे कल्पना के बल पर एक चेहरा–एकपोशाक, एक नाम और एक कहानी की स्कीम के मुताबिक एक अदद पार्ट उसे सौंपकर कहानी के चौखट में जड़ देना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। (यह मेरी सीमा है – सबकी नहीं भी हो सकती।)

प्रश्न : मित्रो के उन्मेष के बारे में बताइए। आपके मानस में रूपाकार ग्रहण करते समय उसे काफ़ी समय लगा होगा।

उत्तर : आपने मित्रो के बारे में पूछा है। मित्रो व्यक्ति की जिस छटपटाहट की प्रतीक है, वह यौन उफ़ान की नहीं, व्यक्ति की अस्मिता का भी अक्स है, जिसे नारी की पारिवारिक महिमा में भुला दिया जाता है। हाथ की मेहनत और देह से सुखदान इतना सा ही है उसका यशोगान। मित्रो को लिखने से पहले कुछ मालूम नहीं था कि वह किस तस्वीर का नैगेटिव था या उस नैगेटिव से कौन सा चेहरा उभर आयेगा। डंगर के पास सिर पर बोझा उठाए एक जीती जागती काया हरियाली क्यारी सी दिखी थी एक बार। आँखों में ललक, आँचल तले उभार। लहँगा–ओढ़नी में मढ़ा हुआ गेहुँआ गदराया बदन। हाड मांस की अनोखी देह रूपहले पानी में कसी हुई। आँखों में ललचाती आदिम दीठ। लौंग से इतराती छुटकी सी नाक। झाड़ियों की सीध तनिक गर्दन घूमी। ठेकेदार को पास आते देखा तो काँकरी मार दी – 'इधर तो देखना मत, ठेकेदार जी, लहँगडू की माँद में अट गए तो गए काम से ? झेंप ने अधेड़ ठेकेदार का चेहरा लीप दिया। खिसियानी से उबरकर चुहल की – आप ही भरमा रही है

कमज़ात। तेरी महामाया बींध दी तो सारा मर्म धर्म घरा रह जाएगा, पगलाई फिरेगी।' ओढ़नी से संकेत छलकाती पथरीले पठार पर नुकीली बिजली चमक गई – जाप कर, जाप कर इस शर्बती का, कच्ची–पक्की हौंस से तभी छुटकारा मिलेगा ठेकेदार।'

लेखक अपने सफ़ेद पोश दिल दिमाग के दंभ में मौन था। वाचालता पर कोई रोक नहीं। जो भी बोला जाएगा हवा में तैरता रहेगा। ठिठका रहेगा। पकड़ लिया जाएगा या दिल के पिछवाड़े गुम हो जाएगा। लेखक की असमंजस को परे ठेल शब्दों की कड़ी गाहे–बगाहे कान में फुसफुसाती रही – 'तन बड़ा की मन' ? कहने को मन और पाने को तन, इसी अंगियारी नोंक पर दुनियां स्थित है। ..... जिस देह से हर सिंगार झरते हैं उसी द्वारा आत्मा की मूल निधि को उगाया जाता है। उसकी वसूली की जाती है। देह में रूह की प्रतिष्ठा होती है तो क्या उसकी अवहेलना बदगुमानी नहीं ? ... पुराने पठार को अपने स्पर्श से जगाती–लहराती मिश्री बाई की चूनर रंगोली झुलाती रही।

एक शाम न जाने किस आगम जानी में लेखक ने ठेकेदार की घुयाँखी निगाह से परे उस लहर को पहचान लिया और उस साक्षात पर विराम लगाने की पेशकश में उसका पीछा–पिछौना देखने की हिमाकत कर डाली। दुविधा से हवा में पत्ते उड़ने लगे और अजन्मी रचना और रचनाकार के बीच लावारिस वक़्त पसर गया। ... फिर, बरसों बाद, ठिठरती सर्दी की रात। शहर की पुरानी खस्ता बस्ती में से गुज़रते हुए सहसा कदम ठिठक गए। किसी के झीखने–कलपने की आवाज़ कानों पर ठुक गई, "अम्मा, अपने बेटे को किसी वैद्य–हकीम के पास ले जा। यह लीला इसके बस की नहीं।' फिर चटाक–चटाक और उसके बाद वही आवाज़ – 'मारो, मार कर गाड़ दो मुझे। इस संताप से तो छुट्टी हो।'

लेखक सहम कर सोचने लगा–क्या कोई पुरानी बात दोहरायी जा रही है ? इस संवाद को पहले भी सुना था कभी। कोई उलाहना, कोई लांक्षन–कहीं कोई परदा नहीं, जो कहा गया है उतना ही। दोष है तो किसका ? काया के बिना कामना। जिस प्यास का यह मंत्र है, उसकी तृष्णा से वितृष्णा कैसी ? ..... अपने से दूसरे तक, दूसरे से अपने तक – एक ही आदिमलय के दो टुकड़े। दोहरे क्षण की सनसनाहट में दोनों संज्ञाओं के चेहरे सरसरा कर एक हो गए। इस दोहरी सामर्थ्य की टक्कर है क्या ? दो अलग–अलग सतहों पर इंकार और स्वीकार। भला इस माँग की भी कितनी बिसात होगी। औकात कितनी होगी उस छलकती धड़कती चाहत की जो पाप और पुण्य से बड़ी है और उनके दावों तक से बाहर है।

किसी भी तरह की रूमानी कल्पना को परे ठेल लेखक की नज़र एक सीधी–सादी गृहस्थी की चौखट पर अटक गई। पहले घर का रोशनदान दीखा, फिर पुराना छाता और प्रकट हो गए गुरूदास बिछौने पर लेटे हुए। चूल्हें के पास बैठी धनवंती और अंदर से झाँकती बहुओं की परछाइयाँ। जितनी आँख की तौफ़ीक है उतना ही तो देखा जायेगा, जिना गहरे पैठोगे उतना छुआ जायगा। ..... घर–गृहस्थी के कपाट के पीछे से मित्रो झाँक गई, अपने चैतन्य से अपने आस–पास को पढ़ती–हँसती, खैलती–तरेरती, औरत होने के पुरानेपन को खोलती–उघाड़ती, अपने में विवेक जगाती। .... मंच बन उठता है एक परिवार का घर–आँगन अपने में संपूर्ण संसार। पर कोई भी संसार अपने होने से ही, अपने होने में ही कब संपूर्ण है। वे सब पाने–जुटाने की उस दहक–महक से जुड़े बंधे है, जो हाड–माँस के कपड़ों में धड़कते–फड़कते हैं।

प्रश्न : यदि आप कृष्णा (सोबती) न होकर 'कृष्ण' होती तो क्या आपकी मित्रो का वही रूप प्रकाश में आता जो अब हमारे सामने हैं ?

उत्तर : अगर कृष्ण और 'कृष्णा' एक ही बात नहीं तो सोबती के यहाँ दोनों मौजूद हैं। विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि नाम की एक मात्रा कम ज्यादा होने पर भी जीने और जीने की चैतन्य को बदला नहीं जा सकता। अनुभव एहसास और समझने–परखने की लिपि जीवन को जिस संस्कार से उद्‌भासित करती है उसमें व्याकरण के स्त्रीलिंग और पुलिंग का ही समुचा योगदान नहीं, मानवीय संवेदन के उस कार्यकारी अनुशासन की क्रमबद्धता भी है जो नारी हो या पुरुष दोनों को अपने अपने मानसिक पर्यावरण के स्रोत बिंदु से विस्तार पाता है, विस्तृत होता है।

आसपास की फैली जीवन की रचनात्मकता को एक खास लेखकीय अंदाज में जीने और पड़तालने के लिए कड़ा वैचारिक संयम, अनुभव की सरलता, ठंडी–गर्म तटस्था न मात्र किसी 'कृष्ण' के हिस्से में आती है और न किसी 'कृष्णा' के ही। कौन क्या है, क्या जी रहा है क्या टटोल रहा है, क्या समेट रहा है, अपने से लेकर अपने तक को रचने में क्या गूँथ रहा है, क्या छान रहा है – 'अ' हो या 'ई' उनके अस्तित्व और संज्ञा का व्याकरण उसकी समग्र सृजनातमक क्षमता को तय नहीं करता। इस विषय को लेकर बराबर बहस हो सकती है, तर्क दिए और काटे जा सकते हैं, लेकिन लेखन के स्तर पर कुछ पाया उपजाया नहीं जा सकता। मानवीय संवाद और संवेदन शारीरिक सीमाओं और उसके स्वभाव की दुर्बलताओं–क्षमताओं को अबूर करते हैं, उनका अतिक्रमण करते हैं। यदि मात्र नारी और पुरुष के नामों का सहारा लेकर प्रखरता का विवेचन किया जाय तो रचनात्मक संदर्भ पूर्ण रूप से हमेशा सही नहीं बैठेगें।

हम सभी जानते हैं कि पुरुष–लेखन का औसत भाग भी ज़रूरी तौर पर अच्छे और खरे मापदंड़ों पर पूरा नहीं उतरता । वहाँ भी वह उतना ही भावुक, छिछला और सतही देखा जा सकता है। बुनियादी तौर पर श्रेणियों की बाँट उतनी ही सही और ग़लत होती है जितनी उसे प्रभावित करती है, उसकी व्यक्तिगत सोच, संस्कार और अपने आस–पास के सामाजिक और बौद्धिक पर्यावरण के जलवायु का भी।

❖ ❖ ❖

डॉ० प्रतिभाराय द्वारा कुछेक प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न : सबसे पहले कुछेक शब्द आपकी रचना प्रक्रिया के बारे में पूछना चाहूँगा। आपकी कहानियों में कहीं कथानक की प्रधानता हैं तो कहीं चरित्र विशेष की। वैसे अधिकार कहानियों में कथानक की ही प्रधानता है। कृपया यह बताएँ कि क्या कहानी की प्रेरणा भी किसी घटना विशेष से मिलती है या किसी चरित्र विशेष से ?

उत्तर : बिंदु में सिंधु दर्शन करना क्षुद्रगल्प (कहानी) का धर्म है। जिन्दगी की एक–एक पल की अनुभूति और तद्जनित अनुभव को कहानी व्यक्त करती है इसलिए कहानी की कोई निश्चित कथा–वस्तु नहीं होती। लेखक के चारों ओर घटने वाली सामाजिक समस्या मूलक घटना अथवा कोई चरित्र शिल्पी की अन्तरात्मा तथा सिल्पीसत्ता का दोहला देता है। उस समय उस घटना या उस घटना से सम्बन्धित चरित्र कहानी के रूप में रूपायित होता है। सामान्य नज़रों में जो चरित्र अथवा घटना हेय और नगण्य माना जाता है, उसी चरित्र या घटना में कथा शिल्पी असाधारण भावसत्ता का दर्शन करता है। अतः जब मुझे कोई घटना या चरित्र दोहला देते हैं मैं लिखती हूँ – स्याही से नहीं रक्त से। कभी–कभी चरित्र और घटना भी मनुष्य मन के अवचेतन समुद्र–मंथन में गौण हो जाते हैं – जीवन के अमृत और हलाहल के संघर्ष में। यही मेरी कहानी का उत्स है प्रेरणा है।

प्रश्न : पुरुष लेखको की तुलना में महिला–लेखकों में आपको कौन सी विशिष्टताएँ दिखाई देती हैं ?

उत्तर : लेखक जब सृष्टि–मुखर होता है तब वह न पुरुष रहता है और न नारी। स्रष्टा–मानस लिंग भेद, जाति–धर्म, वर्ण, स्थान आदि के उर्द्ध में रहता है –"A

writer is beyond gender and geography". साहित्य में पुरूष साहित्य और नारी साहित्य जैसा विभाजन किया जा सकता है ऐसा मैं नहीं मानती। फिर भी समय के प्रभाव से जिस तरह मनुष्य अछूता नहीं है, उसी तरह सामाजिक परंपरा और श्रृंखला से भी वह मुक्त नहीं है। समय और रीति भी मनुष्य की भावनाओं को प्रभावित करता है। इसके अलावां जैविक कारण से हो या सामाजिक कारण से स्त्री और पुरुष भिन्न हैं। अतः इस भिन्नता का लेखकीय सत्ता में थोड़ा बहुत प्रतिफलित होना स्वाभाविक है। अवश्य ही विश्व साहित्य में अनेक नारी चरित्र का सृजन पुरुष लेखकों द्वारा हुआ है। पर, यह कहाँ तक निरपेक्ष है यह विचार योग्य है। उदाहरण के लिए विश्व साहित्य के श्रेष्ठ महाकाव्य रामायण और महाभारत के नारी चरित्र को विचार के लिए लिया जा सकता है। यद्यपि द्रौपदी, अहल्या, तारा, कुंती, मंदोदरी आदि को सती नारी की आख्या दी गई है, लेकिन स्रष्टा ने इन चरित्रों के साथ उचित न्याय किया है – ऐसा नहीं लगता है, ठीक उसी प्रकार मंथरा, कैकेयी, सुपर्णखा, भानुमति, उर्मिला, भरत पत्नी माण्डवी और शबरी आदि चरित्र भी ग्लान मालूम पड़ते हैं। केवल त्याग, उत्सर्ग, अत्याचार और आँसू की मालाओं से भूषित करके इन चरित्रों को महनीय बनाने की प्रचेष्ठा यहाँ की गई है या फिर ईर्ष्या, घृणा, काम या क्रोध के द्वारा उनकी निंदा की गई है। साम्प्रतिक समय में भी पुरुष लेखकों के द्वारा नारी का अधिकार संघर्ष एवं अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण निरपेक्ष नहीं लगता। उसी तरह लेखिकाओं द्वारा पुरुष के अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक संघात का जितना स्पष्ट होना चाहिए था, उतना स्पष्ट नहीं है। साम्प्रतिक समय में लेखिकाओं की रचना में नारी अधिक स्वाभाविक, स्वच्छन्द और महिमामयी लगती है।

प्रश्न : लेखक/लेखिका के निजी अनुभव और उसकी सृजन प्रक्रिया के आपसी सम्बन्धों के बारे में आप क्या सोचती हैं ?

उत्तर : रचना–प्रक्रिया में लेखक–लेखक नहीं रहता है। वह घटना या चरित्र बन जाता है। वहाँ कोई और दूसरा पार्श्व नहीं रहता। स्रष्टा और सृष्टि एकात्म हो जाते हैं। चरित्र की आत्मा में लेखक की आत्मा प्रवेश करता है और चरित्र का सुख दुःख, यंत्रणा सभी लेखक का अपना हो जाता है। वहाँ लेखक ही नहीं चरित्र ही अपने आप को लिखता है। एक–एक कहानी के सृजन के लिए लेखक को जन्मान्तर ग्रहण करना पड़ता है। लेखक अपने जीवन में कितनी बार जीता है, मरता है, उसका हिसाब नहीं होता। लेखक की आत्मसत्ता जब चरित्र की आत्मसत्ता में रूपायित होता है, तभी रचना सार्वजनीन और कालजयी होती है। सिर्फ अनुभूति नहीं, अनुभूति और सहानुभूति के मिश्रण से ही लेखक का अनुभव तीव्र और गंभीर होता है। यह अनुभव ही लेखक को यंत्रणा वर्जर करता है। इन सबका मूलमंत्र है प्रेम और भय शून्यता। यदि लेखक की व्यक्ति सत्ता प्रेम भावापन्न नहीं, तब संवेदन–शीलता कहाँ से आयेगी ? दुनियाँ के प्रति यह प्रेम भाव की क्रांति लाता है। लेखक उनके लिए कहता है जो कहने के लिए व्यग्र तो हैं लेकिन कह नहीं पाते। इसलिए लेखक का प्रत्येक लेखन एक एक युद्ध घोषणा है और उसका हर एक चरित्र अपने–अपने स्थान पर अपनी अपनी शैली में एक क्रांतिकारी है। यह मेरा अनुभव है।

पश्न : आप सीता और द्रौपदी में द्रौपदी को पहला स्थान देती है। वह इसलिए कि द्रौपदी अन्याय, अविचार को सीता की तरह चुप–चाप सहन नहीं करती, उसका प्रतिवाद करती है। लेकिन आपकी अधिकांश कहानियों में आप की नायिकाएँ सीता का ही अनुकरण करती नज़र आती हैं। यदि कहीं द्रौपदी की

भाँति प्रतिवाद करती भी हैं तो वह प्रतिवाद दबा–दबा सा रह जाता है ऐसा क्यों?

उत्तर : रातों–रात सामाजिक परिवर्तन नहीं होता है। अंधविश्वास, कुसंस्कार, पुरुष प्रधान समाज में नारी और पुरूष के लिए रीति, नीति के पार्थक्य को ऊँची आवाज से श्लोगान देकर दूर नहीं किया जा सकता। मंदिर बनाने के लिए मस्जिद तोड़ने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिवाद के स्वर दो प्रकार के होते हैं। एक क्रांति और दूसरा विप्लव। सीता का व्यक्तित्व क्रांतिकारी है। रक्ताक्त विप्लव में उनका भरोसा नहीं था। अंत में उनके भूमि प्रवेश को अन्याय को चुपचाप सहना नहीं कहा जा सकता। दरअसल यह था राम के स्वामीत्व का प्रत्याख्यान। नहीं तो एक बार फिर से अग्नि मे प्रवेश करके वह अपना सतीत्व का निर्वाह कर सकती थीं। द्रौपदी भरोसा रखती थी विप्लव पर। दोनों ही चरित्रों ने समाज के अन्याय के खिलाफ़ आवाज उठाया है। जिस विद्रोह के स्वर को आप 'दबा हुआ' समझते हैं वह भी विद्रोह का स्वर है। विषय वस्तु तथा चरित्र को लेकर विद्रोह के स्वर को भी अलग होने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

प्रश्न : 'सेक्स' तथा नैतिकता के बारे में आपका क्या ख्याल है ?

उत्तर : 'सेक्स' मनुष्य की तरह की पुरातन है। जहाँ जीवन है वहाँ 'सेक्स' विद्यमान है। इसलिए 'सेक्स' और साहित्य एक दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से संपृक्त हैं। जीवन तथा साहित्य से सेक्स को अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। बौद्धिक प्रवंचना पूर्ण आदर्शबोध को लेकर सेक्स पर विचार करने से 'सेक्स' सभी परिस्थितियों में अनैतिक लगता है। 'सेक्स' निंदनीय नहीं है अतः वर्जनीय वस्तु नहीं है। लेकिन सेक्स को केवल

'सेक्स के लिए जीवन अथवा साहित्य में प्राधान्य देने से वह जीवन और साहित्य में अश्लील भाव चेतना का निर्माण करता है। अवश्य ही श्लिलता और अश्लीलता स्थान समय और पात्र के अनुरूप वीचारणीय है। साहित्य में इस सेक्स अनुभूति का जीवन्त अर्थात् कलात्मक भाव से प्रकाश करने से साहित्य की मर्यादा बढ़ता है। सेक्स और नैतिकता का अन्तः सम्बन्ध जटिल है। नैतिकता का आकाश इतना संकीर्ण नहीं है जितना हम समझते हैं।

उत्तर : 'ट्रलीवाली' के उन्मेष के बारे में बताइए। आपके मानस में रूपाकार ग्रहण करते समय काफ़ी समय लगा होगा।

उत्तर : 'ट्रलीवाली' कहानी की नायिका कल्पना नहीं है। यह समाज का एक जीता–जागता चरित्र है। लेखिका ने इस चरित्र को वर्षो से अपने शहर में अनुध्यान किया है। इस चरित्र को कहानी का रूप लेने में लगभग चार वर्ष लगा है।

प्रश्न : आप प्रतिभा न होकर, प्रभात होती तो क्या 'ट्रलीवाली' का वही रूप प्रकाश में आता, जो अब हमारे सामने हैं ?

उत्तर : मैं प्रतिभा न होकर यदि प्रभात होती तो 'ट्रलीवाली' के इस रूप को प्रकाश करती या न करती यह कहना अब कठिन है। निश्चित रूप से यह अलग होता यह मेरा अनुमान है। मैं प्रतिभा न होकर कृष्णा सोबती भी होती तो भी 'ट्रलीवाली' का रूप संपूर्णरूप से इस प्रकार नहीं होता। दो लेखकीय सत्ता का सर्जनात्मक प्रक्रिया और कला निश्चित रूप से भिन्न होगा, यह मेरा मानना है।

❖ ❖ ❖

परिशिष्ट-दो

कृष्णा सोबती और प्रतिभा राय की साहित्य साधना-स्वीकृति, सम्वर्द्धना और सम्मान

कृष्णा सोबती

जन्म १८ फरवरी १९२५

साहित्यिक जीवन की शुरुआत – १९५८

साहित्य साधना

कहानी संग्रहः-

बादलों के घेरे	–	१९८० (२४ कहानियों का एक मात्र कहानी संग्रह)

लम्बी कहानीः-

यारों के यार तीन पहाड़	–	१९६८
डार से बिछुड़ी	–	१९८४
मित्रो मर जानी	–	१९८४
ऐ लडकी	–	१९९१

उपन्यास :-

सूरजमुखी अँधेरे के	–	१९७२
ज़िन्दगीनामा जिन्दा रूख	–	१९७९
दिलो दानिश	–	१९९३

संस्मरणः-

हम हशमत – १९७७

विविधाः-

सोबती एक सोहबत – १९८९

साहित्य साधना की स्वीकृति और सम्मान

'जिन्दगीनामा' के लिए वर्ष १९८० का साहित्य अकादमी पुरस्कार

वर्ष १९८१ का साहित्य शिरोमणि पुरस्कार

❖ ❖ ❖

प्रतिभा राय

जन्म – २१ जनवरी १९४४

साहित्यिक जीवन की शुरुआत १९६४

साहित्य साधना

कहानी संग्रहः-

सामान्य कथन	–	१९७८
गंग शिउली	–	१९७९
असमाप्त	–	१९८०
ऐक्यतान	–	१९८१
अनाबना	–	१९८३
हाथ बॉक्स	–	१९८३
घास ओ आकाश	–	१९८४
चन्द्रभागा व चन्द्रकला	–	१९८४
श्रेष्ठ गल्प	–	१९८४
अव्यक्त	–	१९८७

इतिवृत्तक	–	१९८७
हरितपत्र	–	१९८६
पृथक ईश्वर	–	१९९१
भगवाँर देश	–	१९९१
मनुष्य स्वर	–	१९९२
स्वनिर्वाचित श्रेष्ठ गल्प	–	१९९४
षष्ठ सती	–	१९९६
मोक्ष	–	१९९६

उपन्यासः-

वर्षा वसंत वैशाख	–	१९७४
अरण्य	–	१९७६
निशिद्ध पृथ्वी	–	१९७८
परिचय	–	१९७९
उपनायिका	–	१९७९
पुण्यतोया	–	१९७९
अपरिचिता	–	१९७९
आशावरी	–	१९८०
मेघ मेदूर	–	१९८०
नील तृष्णा	–	१९८१
अयमारभं	–	१९८१
समुद्र स्वर	–	१९८२
शिला पद्म	–	१९८३

जाज्ञसेनी	–	१९८५
देहातीत	–	१९८६
उत्तर मार्ग	–	१९८८

साहित्य साधना की स्वीकृति और सम्मान

'शिला पद्म' के लिए वर्ष १९८५ कर उड़ीसा साहित्य अकादमी पुरस्कार

'जाज्ञसेनी' उपन्यास के लिए १९८९ का सारला पुरस्कार

'जाज्ञसेनी' उपन्यास के लिए १९९१ का मूर्तिदेवी पुरस्कार

अविरल साहित्य साधना के लिए वर्ष १९९५ का विषुव पुरस्कार

❖ ❖ ❖

संदर्भ सूची

मूल ग्रंथ (हिन्दी)

कृष्णा सोबती :

१. यारों के यार तीन पहाड़ – राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, नई दिल्ली–२ प्रथम सं० – १९६८

२. बादलों के घेरे – राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, नई दिल्ली–२ प्रथम सं० – १९८०

३. डार से बिछुड़ी (पेपर बैक्स) – राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, नई दिल्ली–२ तीसरा सं० १९९३

४. मित्रो मरजानी (पेपर बैक्स) – राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, नई दिल्ली–२ तीसरा सं० (पुनर्मुद्रित) १९९४

५. ऐ लड़की – राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, नई दिल्ली–२ प्रथम सं० (पुनर्मुद्रित) १९९३

प्रभा खेतान :

१. छिन्न मस्ता – राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, नई दिल्ली प्रथम सं० – १९९३

मन्नू भंडारी :

१. एक प्लेट सैलाब – अक्षर प्रकाशन, दिल्ली प्रथम सं० १९६८

२. मैं हार गई – अक्षर प्रकाशन, दिल्ली प्रथम सं० १९५७

मैत्रेयी पुष्पा :

१. इदन्नमम – किताब घर, नई दिल्ली – प्रथम सं० – १९९४

२. चिन्हार – आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, प्रथम सं० – १९९१

मृदुला गर्ग :

१. कितनी कैंदे – इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं० – १९७५

२. चर्चित कहानियाँ – सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं० – १९९३

मूल ग्रंथ (उड़िया)

प्रतिभा राय :

१. सामान्य कथन – **आद्या प्रकाशनी**, तुलसीपुर, कटक–८ पाँचवां सं० १९९४

२. गंगशिउली – **आद्या प्रकाशनी**, तुलसीपुर, कटक–८ छठा सं० १९९५

३. असमाप्त – **आद्या प्रकाशनी**, तुलसीपुर, कटक–८ पाँचवां सं० १९९५

४. ऐक्यतान – **नालन्दा**, विनोद बिहारी, कटक–२ चौथा सं० १९९६

५. अनावना – **आद्या प्रकाशनी**, तुलसीपुर, कटक–८, तीसरा सं० –१९९३

६. हाथ बाक्स – **नालन्दा**, विनोद बिहारी, कटक–२ पहला सं० १९९२

७. घास व आकाश – **नालन्दा**, विनोद बिहारी, कटक–२ तीसरा सं० – १९९६

८. चन्द्रभागा व **चन्द्रकला** – आद्य प्रकाशनी, तुलसीपुर, कटक, तीसरा सं० १९९२

९. श्रेष्ठ गल्प – **नालन्दा** , विनोद बिहारी, कटक–२, तीसरा सं० – १९९४

१०. अव्यक्त – **नालन्दा** , विनोद बिहारी, कटक–२, दूसरा सं० – १९९१

११. इतिवृतक् – **नालन्दा** , विनोद बिहारी, कटक–२, दूसरा सं० – १९९३

१२. हरित पत्र – **नालन्दा** , विनोद बिहारी, कटक–२, दूसरा सं० – १९९२

१३. पृथक ईश्वर –**नालन्दा** , विनोद बिहारी, कटक–२, दूसरा सं० १९९४

१४. मनुष्य स्वर – आद्या प्रकाशनी, तुलसीपुर, कटक–८, तीसरा सं० –१९९३

१५. षष्ठ सती – आद्या प्रकाशनी, तुलसीपुर, कटक–८, पहला सं० – १९९६

१६. मोक्ष – आद्या प्रकाशनी, तुलसीपुर, कटक–८, पहला सं० – १९९६

१७. ज्ञाज्ञसेनी – नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक–२, तीसरा सं० १९८८

वीणापाणि महांति :

१. कुंती, कुंतला शकुंतला – फ्रेंडस पब्लिसर्स, विनोद बिहारी, पहला सं० – १९८४

२. पाटदेई – विद्यापुरी, बालुबाजार, कटक पहला सं० – १९८७

३. तृतीय पाद – फेंडस पब्लिसर्स, विनोद बिहारी, कटक पहला सं० १९८९

विजयिनी दास :

१. वाग्दत्ता – नालन्दा, विनोद बिहारी, कटक–२ पहला सं० १९८६

२. डायरी – उड़ीसा बुक स्टोर, विनोद बिहारी, कटक–२ पहला सं० – १९८६

३. सिंहासन – उड़ीसा बुक स्टोर, विनोद बिहारी, कटक–२ पहला सं० – १९९३

यशोधरा मिश्र :

१. जन्ह राती – फ्रेण्डस पब्लिसर्स, विनोद बिहारी, कटक, प्रथम सं० १९८७

२. सेतु–बंध (अनूदित) – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली–३ दूसरा सं० – १९९१

अनूदित मूल ग्रंथ

१. उड़िया की श्रेष्ठ कहानियाँ – पुष्प प्रकाशन, नई दिल्ली–६५ (संपादक डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र) – प्रथम सं० १९८८

२. पूर्वाशा (उड़िया की पन्द्रह प्रसिद्ध महिला कथाकारों की श्रेष्ठ कहानियाँ – संपादन व अनुवाद – डॉ राजेन्द्र प्रसाद मिश्र) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली–२ पहला सं०– १९९६

३. भारतीय शिखर कथाकोश (ओड़िया कहानियाँ) संपादक कमलेश्वर, पुस्तकायन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम सं०– १९९४

सहायक ग्रंथ (हिन्दी)

१. कृष्णा सोबती – सोबती एक सोहबत, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली–२, प्रथम सं० १९८९

२. के० एम० मालती – साठोत्तर हिन्दी कहानी, लोक भारती – प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं० – १९९१

३. तस्लीमा नसरीन – औरत के हक में, (अनुवादक–मुनमुन सेन) वाणी प्रकाशन,

नई दिल्ली–२ प्रथम सं० १९९६

४. महादेवी वर्मा – श्रृखंला की कड़ियाँ, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं०–१९४२

५. मधुरेश – हिन्दी कहानी का विकास, नई कहानी, इलाहाबाद, प्रथम सं०–१९९६

६. राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली–२, प्रथम सं० १९८०

७. डॉ० वंशीधर, राजेन्द्र मिश्र – मन्नू भंडारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल, प्रथम सं०–१९८३

८. डॉ० विजया वारद – साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएँ विकास प्रकाशन, कानपुर–१४ प्रथम सं०–१९९३

९. सीमोद द बोउवार – द सेंकेण्ड सेक्स का हिन्दी रूपान्तर – 'स्त्री उपेक्षिता' प्रस्तुति डॉ० प्रभा खेतान, सरस्वती विहार, दिलशाद गार्डन, दिल्ली–९५, प्रथम सं० १९९४

१०. वार्षिकी – भारतीय साहित्य सर्वेक्षण – १९८९, १९९० केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली

सहायक ग्रंथ (उड़िया)

१. डॉ० प्रसन्न पाटशाणी, श्री रमेश भूयाँ – साम्प्रतिक प्रबन्ध व समालोचना, उड़ीसा बुक स्टोर, विनोद बिहारी, कटक, प्रथम सं० १९९३

२. डॉ० मन्नथ कुमार प्रधान – साहित्य र प्रतिध्वनि, आशा पुस्तकालय, बाराक्स, ब्रह्मपुर–१, प्रथम सं० १९९५

३. डॉ० रंजिता नायक – समालोचना संभार, उड़ीसा बुक स्टोर, विनोद बिहारी, कटक, प्रथम सं० – १९९३

४. श्रीमती लावण्य नायक – सारस्वत समीक्षा, पुस्तक भंडार, बॉक बाजार, कटक, प्रथम सं० १९८०

पत्र-पत्रिकाएँ (हिन्दी)

आजकल – संपादक, प्रताप सिंह बिष्ट, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली

इंडिया टुडे (साहित्य वार्षिकी – १९९६–९७) संपादक– अरूण पुरी, लिविंग मिडिया इंडिया लि०, नई दिल्ली

पूर्वग्रह – संपादक – अशोक बाजपेयी, भारत भवन, भोपाल

वर्तमान साहित्य (कहानी महाविशेषांक) अतिथि संपादक–रवीन्द्र कालिया, गाजियाबाद

समकालीन भारतीय साहित्य – संपादक–गिरधर राठी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

साप्ताहिक हिन्दुस्तान – संपादक – मनोहर श्याम जोशी, हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन, नई दिल्ली

साक्षात्कार – मध्य प्रदेश साहित्य परिषद्, भोपाल

हंस – संपादक – राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली

पत्र-पत्रिकाएँ (उड़िया)

झंकार – संपादक – भर्त्तृहरि महताब, प्रजातंत्र प्रचार समिति, कटक–२

सारांक्ष –

❖ ❖ ❖